॥ श्रीभगवद्गीता ॥

मुंशीहरिवंशलालकृत भाषाटीकासहित

जिसमें

श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द परब्रह्मस्वरूपने निज
भक्त अर्जुन के आत्मस्वरूप बोधार्थ
परमज्ञानोपदेश किया है

वही

द्वितीयबार

लखनऊ

मुंशी नवलकिशोर (सी, आई, ई) के छापेखाने में छपी

सन् १९०७ ई० ॥

कापी राइट महफ़ूज़ है बहक़ नवलकिशोर प्रेस

* श्रीमद्भगवद्गीता सटीक *

॥ प्रथम अध्याय ॥

॥ धृतराष्ट्र उवाच ॥

धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः ।
मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत संजय १ ॥

॥ संजय उवाच ॥

दृष्ट्वा तु पाण्डवानीकं व्यूढं दुर्योधनस्तदा ।

धृतराष्ट्र ने सञ्जयसे यह प्रश्न किया कि धर्म्म-क्षेत्र अर्थात् धर्म्मका उत्पत्तिस्थान कुरुक्षेत्र में हमारे और पाण्डवके योद्धा युद्धकी इच्छासे मिलेहुये क्या करते हैं १ ॥

सञ्जयने उत्तर दिया कि दुर्य्योधनने पाण्डव

आचार्यमुपसंगम्य राजा वचनमब्रवीत् २ ॥
पश्यैतां पाण्डुपुत्राणामाचार्य महतीं चमूम् ।
व्यूढां द्रुपदपुत्रेण तव शिष्येण धीमता ३ ॥
अत्र शूरा महेष्वासा भीमार्जुनसमा युधि ।
युयुधानो विराटश्च द्रुपदश्च महारथः ४ ॥
धृष्टकेतुश्चेकितानः काशिराजश्च वीर्यवान् ।

की सेना व्यूहरचनासे स्थित भई हुई देखकर द्रोणाचार्य्य के निकट जायकर यह कहा २ ॥

कि पाण्डुके पुत्रोंकी बड़ी सेना देखिये कि राजा द्रुपदके पुत्र धृष्टद्युम्न और आपके बुद्धिमान् शिष्यने व्यूढ अर्थात् व्यूहरचना धरी है ३ ॥

और उस सेनामें बड़े २ धनुर्द्धारी शूर युद्धमें भीम और अर्ज्जुन के समान युयुधान और राजा विराट और राजा द्रुपद महारथ हैं ४ ॥

धृष्टकेतु और चेकितान नाम राजा और काशी

पुरुजित्कुन्तिभोजश्च शैब्यश्च नरपुङ्गवः ५ ॥
युधामन्युश्च विक्रान्त उत्तमौजाश्चवीर्यवान् ।
सौभद्रो द्रौपदेयाश्च सर्व एव महारथाः ६ ॥
अस्माकं तु विशिष्टा ये तान्निबोध द्विजोत्तम ।
नायका मम सैन्यस्य संज्ञार्थं तान्ब्रवीमि ते ७ ॥

का पराक्रमी राजा और राजा पुरुजित् और कुन्तिभोज और शैब्य राजा नरों में श्रेष्ठ है ५ ॥

और युद्धमें प्रवृत्त राजा उत्तमौजा पराक्रमी राजा युधामन्यु राजा सौभद्र अर्थात् अभिमन्यु अर्ज्जुनका पुत्र और द्रौपदी के पांचौपुत्र ये सब महारथी हैं ६ ॥

और अपनी सेनाके सेनापतियों के नाम हे महाराज ब्राह्मणोंमें उत्तम ! आपके जाननेके हेतु कहताहूं. ७ ॥

भवान्भीष्मश्च कर्णश्च कृपश्च समितिञ्जयः ।
अश्वत्थामा विकर्णश्च सौमदत्तिस्तथैव च ८ ॥
अन्ये च बहवः शूरा मदर्थे त्यक्तजीविताः ।
नानाशस्त्रप्रहरणाः सर्वे युद्धविशारदाः ९ ॥
अपर्याप्तं तदस्माकं बलं भीष्माभिरक्षितम् ।
पर्याप्तं त्विदमेतेषां बलं भीमाभिरक्षितम् १० ॥

आप और भीष्माचार्य्य कर्ण कृपाचार्य्य युद्ध के जीतनेवाले अश्वत्थामा विकर्ण और वैसेही सौमदत्ति भूरिश्रवा नामक ये सब हैं ८ ॥

और भी बहुतसे शूर मेरे हेतु जीव त्याग करनेवाले और नानाशस्त्रसे युद्ध करनेवाले और सब युद्धमें समर्थ हैं ९ ॥

भीष्मसे रक्षित हमारी सेना अपर्य्याप्त अर्थात् असमर्थ है और भीमसे रक्षित इनकी सेना पर्य्याप्त अर्थात् धनी देखपड़ती है तात्पर्य्य यह है कि भीष्म दोनों के पितामह होनेसे किसी के पक्ष

अयनेषुच सर्वेषु यथाभागमवस्थिताः ।
भीष्ममेवाभिरक्षन्तु भवन्तः सर्व एव हि ११ ॥
तस्य संजनयन्हर्षं कुरुवृद्धः पितामहः ।
सिंहनादं विनद्योच्चैः शङ्खं दध्मौ प्रतापवान् १२ ॥
ततः शङ्खाश्च भेर्यश्च पणवानकगोमुखाः ।
सहसैवाभ्यहन्यन्त स शब्दस्तुमुलोभवत् १३ ॥

में नहीं हैं और भीमसेन तो अपनेही दलका पक्षपाती है १० ॥

सब व्यूहके प्रवेशमार्ग्ग में यथाभाग खड़े होकर आपलोग भीष्महीकी रक्षा कीजिये ११ ॥

गुरुओं के पितामह प्रतापी भीष्माचार्य्य राजा दुर्य्योधनके सन्तोषके हेतु ऊँचेस्वरसे सिंहकी नाईं गर्ज्जकर शङ्ख बजातेभये १२ ॥

तिसके पीछे शङ्ख भेरी पणव आनक और गोमुख इत्यादि बाजे उससमय सेनाके लोग ऐसे

ततः श्वेतैर्हयैर्युक्ते महति स्यन्दने स्थितौ ।
माधवः पाण्डवश्चैव दिव्यौ शङ्खौ प्रदध्मतुः १४ ॥
पाञ्चजन्यं हृषीकेशो देवदत्तं धनञ्जयः ।
पौण्ड्रं दध्मौ महाशङ्खं भीमकर्मा वृकोदरः १५ ॥
अनन्तविजयं राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।

बजाये कि उसका बड़ा शब्द सब दिशाओं में व्याप्तहुआ १३ ॥

इसके अनन्तर श्वेत घोड़े के भारी रथपर श्रीमाधव और पाण्डव अर्थात् श्रीकृष्णचन्द्र और अर्जुन बैठेहुये दिव्य शङ्ख बजातेभये १४ ॥

पाञ्चजन्यनामक शङ्ख श्रीकृष्णचन्द्रजी और देवदत्तनामक शङ्ख अर्ज्जुन और पौण्ड्रनामक महाशङ्ख घोरकर्म्म करनेवाले वृकोदर अर्थात् भीम बजातेभये १५ ॥

अनन्तविजयनामक शङ्ख कुन्ती के पुत्र राजा

नकुलः सहदेवश्च सुघोषमणिपुष्पकौ १६ ॥
काश्यश्च परमेष्वासः शिखण्डी च महारथः ।
धृष्टद्युम्नो विराटश्च सात्यकिश्चापराजितः १७
द्रुपदो द्रौपदेयाश्च सर्वशः पृथिवीपते ॥
सौभद्रश्चमहाबाहुःशङ्खान्दध्मुःपृथक्पृथक्१८॥
स घोषो धार्त्तराष्ट्राणां हृदयानि व्यदारयत् ।

युधिष्टिर और सुघोषनामक शङ्ख नकुल और मणिपुष्पकनामक शङ्ख सहदेव बजातेभये १६॥

श्रेष्ठ धनुषका धारण करनेवाला काशिराज और महारथ शिखण्डी और धृष्टद्युम्न और राजा विराट और पराजय न होनेवाला सात्यकी १७ ॥

और राजा द्रुपद और द्रौपदी के पांचौ पुत्र और महाबाहु अभिमन्यु ये सब हे पृथ्वीपति धृतराष्ट्र! अपना २ शङ्ख पृथक् २ बजातेभये १८॥

इन शङ्खों के शब्द धृतराष्ट्र के पुत्रोंका हृदय

नभश्चपृथिवींचैव तुमुलोऽव्यनुनादयन् १९ ॥
अथव्यवस्थितान्दृष्ट्वा धार्त्तराष्ट्रान्कपिध्वजः ।
प्रवृत्ते शस्त्रसंपाते धनुरुद्यम्य पाण्डवः २० ॥
हृषीकेशं तदा वाक्यमिदमाह महीपते ।
॥ अर्जुन उवाच ॥
सेनयोरुभयोर्मध्ये रथं स्थापय मेऽच्युत २१ ॥

फाड़कर आकाश और पृथ्वी में प्राप्तहो प्रतिध्वनि करतेभये १९ ॥

इसके अनन्तर युद्धसन्निधि धार्त्तराष्ट्र अर्थात् कुरुसेनानायकों को कपिध्वज पाण्डव अर्थात् अर्ज्जुन शस्त्रपात में प्रवृत्त देख अपना धनुष चढ़ाकर २० ॥

हे महीपति धृतराष्ट्र ! श्रीकृष्णसे यह वचन कहा कि दोनों सेनाके बीचमें हे अच्युत ! हमारा रथ खड़ारक्खो २१ ॥

यावदेतान्निरीक्षेहं योद्धुकामानवस्थितान् ।
कैर्मयासहयोद्धव्यमस्मिन् रणसमुद्यमे २२ ॥
योत्स्यमानानवेक्षेहं य एतेऽत्र समागताः ।
धार्त्तराष्ट्रस्य दुर्बुद्धेर्युद्धेप्रियचिकीर्षवः २३ ॥
॥ संजय उवाच ॥
एवमुक्तो हृषीकेशो गुडाकेशेन भारत ।

कि अबलों जो युद्ध करनेकी इच्छासे खड़े हैं उन्हें देखों कि संग्राममें हमको किन किनके साथ युद्ध करना पड़ेगा २२ ॥

जो लोग यहां युद्धकी इच्छासे आये हैं उन्हें देखें कि वे धृतराष्ट्रके कुबुद्धी पुत्र दुर्य्योधन के प्रियकी इच्छा करनेवाले हैं २३ ॥

सञ्जय धृतराष्ट्र से कहते हैं कि हे भारत धृतराष्ट्र! गुडाकेश अर्थात् निद्राके जीतनेवाले अर्ज्जुन ने हृषीकेश अर्थात् इन्द्रियों के अधिपति

सेनयोरुभयोर्मध्ये स्थापयित्वा रथोत्तमम् २४ ॥
भीष्मद्रोणप्रमुखतः सर्वेषाञ्च महीक्षिताम् ।
उवाच पार्थ पश्यैतान् समवेतान् कुरूनिति २५ ॥
तत्रापश्यत् स्थितान् पार्थः
पितृनथ पितामहान् ।
आचार्य्यान् मातुलान् भ्रातृन्
पुत्रान् पौत्रान् सखींस्तथा २६ ॥

श्रीकृष्ण से जब यों कहा तब दोनों सेनाके बीच में रथ खड़ाकरके २४ ॥

भीष्म द्रोणाचार्य्य और सब राजों के सम्मुख श्रीकृष्ण यह कहतेभये कि हे पार्थ अर्थात् कुन्ती के पुत्र अर्ज्जुन! ये जो कुरुसेनाके नायक खड़े हैं उन्हें देखो २५ ॥

तहां अर्ज्जुन देखतेभये कि चचेरेभाई और द्रोण भीष्मपितामह और गुरु और मामा और

श्वशुरान् सुहृदश्चैव सेनयोरुभयोरपि ।
तान्समीक्ष्यसकौन्तेयःसर्वान्बन्धूनवस्थितान् २७
कृपया परयाविष्टो विषीदन्निदमब्रवीत् ।

॥ अर्जुन उवाच ॥

दृष्ट्वेमान् स्वजनान् कृष्ण
युयुत्सून् समवस्थितान् २८ ॥
सीदन्ति मम गात्राणि
मुखञ्च परिशुष्यति ।

भाई बन्धु और पुत्र पौत्र और मित्र इत्यादि जो वहां उपस्थितथे २६ ॥

ऐसेही श्वशुर और सनेही और सम्पूर्ण बन्धु इत्यादि दोनों सेनाके लोगों को अर्जुनने खड़ेहुये देखके २७ ॥

बड़ी कृपासे आविष्टहो और व्याकुलहो यह कहतेभये कि हे कृष्ण ! इन स्वजनों को युद्धकी इच्छासे खड़ेहुये देखकर २८ ॥

वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते २९ ॥
गाण्डीवं स्रंसते हस्तात्त्वक् चैव परिदह्यते ।
नच शक्नोम्यवस्थातुं भ्रमतीव च मे मनः ३० ॥
निमित्तानि च पश्यामि विपरीतानि केशव ।
नच श्रेयोऽनुपश्यामि हत्वा स्वजनमाहवे ३१ ॥
न काङ्क्षे विजयं कृष्ण नच राज्यं सुखानिच ।

मेरे सब अंग गलतेजाते हैं और मुख सूखता है और मेरा शरीर कम्पायमान होताहै और रोमाञ्च खड़े होते हैं २९ ॥

और गाण्डीवधनुष मेरे हाथसे गिराजाता और देह तप्त होता और खड़ा नहीं रहसक्ता और मेरा मन भ्रमता है ३० ॥

हे केशव ! निमित्तभी विपरीत देखताहौं कि संग्राममें स्वजनको मारकर क्या शुभ देखूंगा ३१ ॥

किं नो राज्येन गोविन्द किं भोगैर्जीवितेन वा ३२
येषामर्थे काङ्क्षितं नो राज्यं भोगाः सुखानिच ।
त इमेऽवस्थिता युद्धे प्राणांस्त्यक्त्वा धनानिच ३३
आचार्य्याः पितरः पुत्रास्तथैव च पितामहाः ।
मातुलाः श्वशुराः पौत्राः
श्यालाः सम्बन्धिनस्तथा ३४ ॥

हे कृष्ण महाराज ! युद्धमें विजयकीभी कांक्षा नहीं और न राज्य सुखकी कि राज्य और भोग लें हमको क्या करना और विना स्वजन प्राण रखकेभी क्या करना है ३२ ॥

जिनके अर्थे राज्य भोग और सुखकी हम कांक्षा करते हैं वेही लोग युद्धमें प्राण और धन त्यागकर खड़े हैं ३३ ॥

ये सब आचार्य्य और चचेरेभाई पुत्र पितामह मामा श्वशुर पौत्र साला और सम्बन्धी लोग हैं ३४ ॥

एतान्न हन्तुमिच्छामि
घ्नतोऽपि मधुसूदन ।
अपि त्रैलोक्यराज्यस्य हेतोः किंनु महीकृते ३५ ॥
निहत्य धार्त्तराष्ट्रान्नः का प्रीतिःस्याज्जनार्दन ।
पापमेवाश्रयेदस्मान् हत्वैतानाततायिनः ३६ ॥
तस्मान्नार्हा वयं हन्तुं धार्त्तराष्ट्रान् स्वबान्धवान् ।

हे मधुसूदन ! ये लोग यदि हमको मारेंगे तो भी हम इनको मारने की इच्छा नहीं करते त्रैलोक्यके राज्यके हेतुभी ऐसा नहीं करने चाहते फिर केवल पृथ्वीके लिये क्यों ऐसा करें ३५ ॥

हे जनार्दन ! धृतराष्ट्रके पुत्रादिकों को मारने से हमको क्या इष्ट होगा और इन आततायियों अर्थात् अधर्म्मियों को मारकर केवल पापही के आश्रय होवेंगे ३६ ॥

इसहेतुसे अपने स्वबन्धु धृतराष्ट्रके पुत्रादिकों

स्वजनं हि कथं हत्वा सुखिनः स्याम माधव ३७॥
यद्यप्येते न पश्यन्ति लोभोपहतचेतसः ।
कुलक्षयकृतं दोषं मित्रद्रोहे च पातकम् ३८ ॥
कथं न ज्ञेयमस्माभिः पापादस्मान्निवर्त्तितुम् ।
कुलक्षयकृतं दोषं प्रपश्यद्भिर्जनार्दन ३९ ॥
कुलक्षये प्रणश्यन्ति कुलधर्माः सनातनाः ।

को मारनेको हमलोग योग्य नहीं हैं हे माधव श्रीकृष्ण! अपने जनोंको मारकर कैसे हमलोग सुखी रहेंगे ३७ ॥

राज्य के लोभसे इनकी मति मारीगई इससे ये लोग कुलका क्षय और मित्र द्रोहका पातक नहीं देखते ३८ ॥

हे जनार्दन! हमलोग विचारवान् हैं इसलिये कुलका क्षय होनेके दोष होनेसे निवृत्ति उपाय क्यों न देखें ३९ ॥

कुलके नाशहोने से सब सनातन कुलधर्म नष्ट

धर्मे नष्टे कुलं कृत्स्नमधर्मोऽभिभवत्युत ४० ॥
अधर्माभिभवात् कृष्ण प्रदुष्यन्ति कुलस्त्रियः ।
स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्णसंकरः ४१ ॥
संकरो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च ।
पतन्ति पितरो ह्येषां लुप्तपिण्डोदकक्रियाः ४२ ॥
दोषैरेतैः कुलघ्नानां वर्णसंकरकारकैः ।

होते हैं और धर्म्मे नष्ट होनेके अनन्तर सम्पूर्ण अधर्म व्याप्त होता है ४० ॥

हे कृष्ण! अधर्म व्याप्त होने में कुलकी स्त्री निन्दित होती हैं और उनके निंदित होनेसे वर्ण-संकर जन्मता है ४१ ॥

और वर्णसंकर कुलनाशक और कुलके नरक होनेका कारण होताहै और उनके पितरभी लुप्त-पिण्डोदकक्रिया होकर पतित होते हैं ४२ ॥

वर्णसंकरकारक दोषोंसे कुलनाशकों का ना-

उत्साद्यन्ते जातिधर्माः कुलधर्माश्चशाश्वताः ४३ ॥
उत्सन्नकुलधर्माणां मनुष्याणां जनार्द्दन ।
नरके नियतं वासो भवतीत्यनुशुश्रुम ४४ ॥
अहो बत महत्पापं कर्तुं व्यवसिता वयम् ।
यद्राज्यसुखलोभेन हन्तुं स्वजनमुद्यताः ४५ ॥
यदि मामप्रतीकारमशस्त्रं शस्त्रपाणयः ।
धार्त्तराष्ट्रा रणे हन्युस्तन्मेक्षेमतरंभवेत् ४६ ॥

तिधर्म्म और वर्णाश्रमधर्म्मभी लोप होताहै ४३ ॥

हे जनार्द्दन ! लुप्तकुलधर्म्मवाले मनुष्यों को ऐसा मानते हैं कि नियत करके नरक में वास होताहै ४४ ॥

हमलोग राज्य और सुखके लोभसे अपने बन्धुवर्ग्गके नाश करने के हेतु उद्युक्त होते हैं सो यह महापापमें प्रवृत्त होनाहै ४५ ॥

यदि हम कि उन्हें नहीं रोकते और शस्त्र

॥ सञ्जय उवाच ॥

एवमुक्त्वाऽर्जुनः संख्ये रथोपस्थउपाविशत् ।
विसृज्यसशरंचापं शोकसंविग्नमानसः ४७ ॥
इति श्रीमद्भीष्मपर्वणिश्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु
ब्रह्मविद्यायांयोगशास्त्रेश्रीकृष्णार्ज्जुनसंवादे
ऽर्जुनविषादयोगोनामप्रथमोऽध्यायः १ ॥

नहीं रखते वे शस्त्रधारी लोग धृतराष्ट्र के पुत्र युद्ध होने में हमें मारेंगे तो हमारा बड़ा कल्याण है ४६ ॥

सञ्जय धृतराष्ट्रसे कहते हैं कि अर्ज्जुन इस प्रकारके वचन संग्राम में कह कर रथके ऊपर धनुषबाण त्यागकर शोकसे सन्तप्तमनहो स्थिर हो बैठा ४७ ॥

अर्ज्जुनके खेदका पहिला अध्याय समाप्त हुआ १॥

॥ द्वितीय अध्याय ॥

तं तथाकृपयाविष्टमश्रुपूर्णाकुलेक्षणम् ।
विषीदन्तमिदं वाक्यमुवाच मधुसूदनः १ ॥

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम् ।
अनार्य्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्त्तिकरमर्ज्जुन २ ॥
क्लैव्यंमास्मगमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते ।

सञ्जय धृतराष्ट्रसे कहते हैं अर्ज्जुन जो अपने बन्धुवर्गोंको देखकर कृपासे व्याप्त आँखों में आँसूभरे खेदसे पूर्ण था श्रीकृष्णचन्द्र उससे यह कहतेभये १ ॥

भगवान् कहते हैं हे अर्ज्जुन! ऐसे विषम दिनमें तुमको यह मोह कहांसे प्राप्तभया जिस मोहको पण्डितलोगोंने नहीं अङ्गीकार किया कि यह स्वर्ग और कीर्त्तिका नाशक है २ ॥

हे पार्थ अर्ज्जुन! भयको मत प्राप्तहो यह तुम्हारे

क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप ३ ॥

अर्ज्जुन उवाच ॥

कथं भीष्ममहं संख्ये द्रोणं च मधुसूदन ।

इषुभिःप्रतियोत्स्यामि पूजार्हावरिसूदन ४ ॥

गुरूनहत्वा हि महानुभावान्

श्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यमपीह लोके ।

हत्वार्थकामांस्तु गुरूनिहैव

भुञ्जीय भोगान् रुधिरप्रदिग्धान् ५ ॥

योग्य नहीं क्योंकि तुम शत्रुको सन्ताप देनेवालेहो यह तुच्छ दुर्बलता हृदयकी छोड़कर उठखड़ेहो ३ ॥

अर्जुन कहते हैं हे मधुसूदन! संग्राम में भीष्माचार्य्य और द्रोणाचार्य्य को जो पूजा करने के योग्य हैं उन्हें हम कैसे बाणों से पीड़ादें ४ ॥

महानुभाव गुरुओं के मारने से यह अच्छा है कि इस लोक में भिक्षा से उदरपोषण करना और जो गुरु के अर्थ की कामना से व्याप्त हैं उनके

नचैतद्विद्मः कतरन्नो गरीयो
यद्वा जयेम यदि वा नो जयेयुः ।
यानेव हत्वा न जिजीविषाम-
स्तेवस्थिताः प्रमुखे धार्त्तराष्ट्राः ६ ॥
कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः
पृच्छामि त्वां धर्म्मसम्मूढचेताः ।

मारने से भी जो भोग यहां प्राप्त होगा सो रुधिर से लिप्त अर्थात् निन्दित कहलावेगा ५ ॥

यह हम नहीं जानते कि क्या हमारे करने के योग्यहै यदि हमलोग उनसे जीतेंगे या वे लोग हमको पराजय करेंगे पर जिनके मारने से हमारा जीना नहीं होगा सो धृतराष्ट्रके बेटे हमारे सामने खड़े हैं ६ ॥

कादरतारूप दोषसे मेरा स्वभाव आच्छादित भयाहै और धर्म्मकी वासनासे मेरा चित्त रहित है इसलिये मैं आपसे पूँछताहौं कि जो निःसन्देह

यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे
शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम् ७ ॥
नहि प्रपश्यामि ममापनुद्या-
द्यच्छोकमुच्छोषणमिन्द्रियाणाम् ।
अवाप्य भूमावसपत्नमृद्धं
राज्यंसुराणामपिचाधिपत्यम् ८ ॥
॥ सञ्जयउवाच ॥
एवमुक्त्वा हृषीकेशं गुडाकेशः परन्तप ।

मङ्गलही सो मुझको उपदेश कीजिये क्योंकि हम आपके शिष्य और शरणागत हैं आप शिक्षा कीजिये ७ ॥

वह हम नहीं देखते जो हमारे इन्द्रियों के सुखानेवाले शोकको दूरकरै क्योंकि इसलोकमें शत्रुरहित सम्पूर्ण राज्य और देवतोंका आधिपत्य भी प्राप्त होनेसे वह शोक नहीं निवृत्त होसक्ता ८ ॥

सञ्जय धृतराष्ट्रसे कहते हैं हे शत्रुतापन धृत-

न योत्स्य इति गोविन्दमुक्त्वातूष्णींबभूवह ९ ॥
तमुवाच हृषीकेशः प्रहसन्निव भारत ।
सेनयोरुभयोर्मध्ये विषीदन्तमिदंवचः १० ॥

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्चभाषसे ।
गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्तिपण्डिताः ११॥

राष्ट्र! गुडाकेश अर्ज्जुनने श्रीकृष्णसे यह कहके कहा कि हे गोविन्द! हम न युद्ध करेंगे फिर चुपरहा ९ ॥

हे भारत धृतराष्ट्र! हृषीकेश श्रीकृष्णने जो दो सेनाके बीच खेदितहो खड़ा रहाथा तिस अर्ज्जुनसे हँसकर यह बात कही १० ॥

भगवान् कहते हैं जो शोक करने के योग्य नहीं उनका तुम शोक करतेहौ और फिर विवेकियों कीसी वार्त्ता करतेहौ, बुद्धिमान् लोग जो इष्टमित्र मरगये या मरेंगे उनका शोक नहीं करते ११ ॥

नत्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः ।
नचैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम् १२ ॥
देहिनोऽस्मिन् यथा देहे कौमारं यौवनं जरा ।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति १३ ॥
मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुःखदाः ।

ऐसा नहीं कि हम और ये सब राजा कभी हैं और कभी नहीं मरने के अनन्तर हम सब न होंगे ऐसाभी नहीं १२ ॥

क्योंकि जैसे इस देहमें बाल्य यौवन और वृद्धता तीनों अवस्था प्राणीको क्रमसे होती हैं वैसे ही देहान्तरकीभी प्राप्ति होती है इसलिये बुद्धि-मान् लोग देह छूटने से समाप्ति न समझ मोहको नहीं प्राप्तहोते १३ ॥

हे भारत ! हे कुन्ती के पुत्र अर्जुन ! इन्द्रियोंकी वृत्तिको जब विषयों से सम्बन्ध होता है तब देही को शीत उष्ण सुख और दुःख इत्यादिकी प्र-

आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत १४
यं हि न व्यथयन्त्येते पुरुषं पुरुषर्षभ ।
समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते १५ ॥
नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः ।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः १६ ॥

तीति होती है और यह सम्बन्ध आगमापायी अर्थात् उत्पत्ति नाशशील और अनित्य है इस लिये इनको सहन करना उचित है १४ ॥

जिस पुरुष को इन्द्रियों की वृत्तियां विषय सम्बन्धसे पीड़ा नहीं देतीं और जिनको सुख और दुःखका अनुभव तुल्य है हे अर्जुन ! वही धीर प्राणी मोक्षप्राप्तिके योग्य है १५ ॥

असत् शीत उष्णआदिका आत्मामें भाव नहीं है और सद्वस्तु आत्माका कभी अभाव नहीं होता है इन दोनोंका निर्णय यथार्थ जाननेवाले विवेकियों ने देखा है १६ ॥

अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम् ।
विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित् कर्तुमर्हति १७॥
अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः ।
अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युध्यस्व भारत १८॥
य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम् ।
उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते १९॥

जिससे यह सम्पूर्ण जगत् व्याप्तहै उसे अविनाशी जानो क्योंकि कोई पुरुष इस नाशरहित आत्माका विनाश नहीं करसक्ता १७॥

हे भारत अर्ज्जुन! आत्मा नित्य सर्व्वदा एक रूप और अविनाशी है और प्रमाण विषय नहीं है उसके ये देहादि सम्बन्ध विनाशी कहेगये हैं इसलिये मोह छोड़कर युद्धमें प्रवृत्तहो १८॥

जो पुरुष इस आत्माको मारनेवाला और जो मारखानेवाला जानताहै सो दोनों इसके जानने के योग्य नहीं हैं क्योंकि यह आत्मा न किसीको

न जायते म्रियते वा कदाचि-
न्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः ।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे २० ॥
वेदाविनाशिनं नित्यं य एनमजमव्ययम् ।
कथं स पुरुषः पार्थ कं घातयति हन्ति कम् २१

मारता है न किसी से मारा जाताहै १९ ॥

यह आत्मा न कभी उत्पन्न होता है न कभी मरताहै और न उत्पन्न होकर वृद्धिको प्राप्त होता है और न स्वभावसे वृद्धिको प्राप्तहोता है इसलिये अज और नित्य जिसकी उत्पत्ति नहीं और सर्व्वदा एकरूप और सनातन है इसमें शरीर नष्टहोनेसे भी आप नहीं नष्ट होता उसे षड्भाव विकारसे रहित जानो २० ॥

हे पार्थ अर्ज्जुन ! इस आत्माको जो पुरुष नाश और उत्पत्तिरहित और नित्य और अव्यय

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय,
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही २२ ॥
नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ।
नचैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः २३ ॥

जानताहै सो पुरुष कैसे दूसरे से घात करावेगा आप करेगा २१ ॥

जैसे लोकमें मनुष्य पुराने वस्त्रको त्यागकर नवीन वस्त्र पहिरते हैं वैसेही देही अर्थात् आत्मा जीर्णशरीर त्यागकर नवीन शरीर में प्राप्त होता है इसलिये जीर्ण देहादि के त्यागसे शोक करना उचित नहीं २२ ॥

ऐसे आत्मा को शस्त्रादि नहीं घात करसक्ते और अग्नि नहीं जलासक्ती और जल नहीं गलासक्ता और वायु नहीं सुखासक्ती है २३ ॥

अच्छेद्योऽयमदाह्योयमक्लेद्योऽशोष्य एव च ।
नित्यःसर्वगतःस्थाणुरचलोऽयं सनातनः२४॥
अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते ।
तस्मादेवं विदित्वैनं नानुशोचितुमर्हसि २५ ॥
अथ चैनं नित्यजातं नित्यं वा मन्यसे मृतम् ।

यह आत्मा निरवयव होने से छेदन होने और गलने और सूखने के योग्य नहीं और नित्य अर्थात् त्रिकाल वाद्य सर्व जगत् में व्याप्त स्थिर अचल और सनातन है २४ ॥

यह आत्मा अव्यक्त अर्थात् चक्षुरादि ज्ञानेन्द्रियों से अग्राह्य और चिंताके योग्य नहीं और कर्मेन्द्रियों के अगोचर है ऐसा तत्त्ववादी महाऋषि लोग कहते हैं इसलिये इस आत्मा को ऐसा जानकर तुम को शोक करना उचित नहीं २५ ॥

हे महाबाहो अर्जुन ! यद्यपि तुम ऐसा मानो कि यह आत्मा सर्वदा देह उत्पन्न होने से उत्पन्न

तथापि त्वं महाबाहो नैवं शोचितुमर्हसि २६ ॥
जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च ।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि २७ ॥
अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत ।
अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना २८ ॥

होता है और देह नाश होने से नष्ट भी होता है तथापि इसलिये तुम शोक करने के योग्य नहीं २६॥

क्योंकि जो उत्पन्न भया सो निश्चय करके नाश होता है और जो नष्ट भया उसका जन्म निश्चित है यह निवारण के योग्य नहीं इस कारण से तुम शोक करने के योग्य नहीं २७ ॥

हे भारत अर्जुन ! प्रकृति जिस भौतिक देहों की आदि है और प्रकट हो कि यह स्थिति उनकी मध्यम और प्रधानही में वह लय भी होते हैं तो इसका खेद क्या २८ ॥

आश्चर्यवत् पश्यति कश्चिदेन-
माश्चर्यवद्वदति तथैव चान्यः ।
आश्चर्यवच्चैनमन्यःशृणोति
श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित् २९ ॥
देहीनित्यमवध्योऽयंदेहे सर्व्वस्य भारत ॥
तस्मात्सर्व्वाणिभूतानि नत्वंशोचितुमर्हसि ३०॥

कोई पुरुष इस आत्मा को शास्त्र और गुरु उप-देशसे आश्चर्यवत् देखता है और कोई इस आ-त्माको आश्चर्यवत् कहताहै और कोई इस आत्मा को विस्मित की नाईं सुनता है और कोई सुनके भी इस आत्मा को नहीं जानता २९ ॥

हे भारत अर्ज्जुन ! यह आत्मा सम्पूर्ण प्रा-णियों के देहमें सदा अवध्य अर्थात् अविनाशी है इस कारण से सम्पूर्णभूतों के हेतु तुम्हें शोक करना अनुचित है ३० ॥

स्वधर्ममपि चावेक्ष्य नविकम्पितुमर्हसि ।
धर्म्याद्धियुद्धाच्छ्रेयोन्यत् क्षत्रियस्यनविद्यते ३१॥
यदृच्छयाचोपपन्नं स्वर्गद्वारमपावृतम् ।
सुखिनःक्षत्रियाःपार्थ लभन्तेयुद्धमीदृशम् ३२ ॥
अथचेत्त्वमिमंधर्म्यं संग्रामन्नकरिष्यसि ।
ततःस्वधर्मंकीर्तिञ्च हित्वापापमवाप्स्यसि ३३ ॥

और अपना धर्म भी देखकर तुम कांपने के योग्य नहीं हो क्योंकि क्षत्रिय को धर्म्मयुद्ध से दूसरा कुछ मङ्गल कल्याणकारक नहीं ३१ ॥

अकस्मात् प्राप्त हुआ खुलाहुआ स्वर्ग का द्वार-रूप ऐसे युद्ध को हे अर्ज्जुन ! भाग्यवान् क्षत्रिय प्राप्त होते हैं ३२ ॥

अब तुम अपना विहित धर्म संग्राम न करोगे तो अपने धर्म और कीर्त्तिको त्यागकर पाप को प्राप्त होगे ३३ ॥

अकीर्त्तिञ्चापिभूतानि कथयिष्यन्तितेऽव्ययाम् ।
सम्भावितस्यचाकीर्त्तिर्मरणादतिरिच्यते ३४ ॥
भयाद्रणादुपरतंमंस्यन्तेत्वाम्महारथाः ।
येषाञ्चत्वम्बहुमतो भूत्वायास्यसिलाघवम् ३५ ॥
अवाच्यवादांश्चबहून् वदिष्यन्तितवाहिताः ।
निन्दन्तस्तवसामर्थ्यं ततोदुःखतरन्नुकिम् ३६ ॥

लोग तुम्हारी नाशरहित अकीर्त्ति कहेंगे और प्रतिष्ठित लोगों को अकीर्त्ति मरण से भी अधिक होती है ३४ ॥

महारथी लोग तुमको जानेंगे कि भयसे संग्राम को त्याग किया और जिनमें तुम बहुमानी हुयेहौ उनके निकट लघुता को प्राप्त होगे ३५ ॥

तुम्हारे शत्रुलोग बहुत से दुर्वचन तुम्हारी सामर्थ्य को निन्दा करते हुये जो कहेंगे इससे अधिकतर दुःख क्या होगा ? ३६ ॥

हतोवाप्राप्स्यसिस्वर्गं जित्वावाभोक्ष्यसेमहीम् ।
तस्मादुत्तिष्ठकौन्तेय युद्धायकृतनिश्चयः ३७॥
सुखदुःखेसमेकृत्वा-लाभालाभौजयाजयौ ।
ततोयुद्धाययुज्यस्व नैवंपापमवाप्स्यसि ३८॥
एषातेभिहितासांख्ये बुद्धिर्योगेत्विमांशृणु ।

हे कुन्ती के पुत्र अर्जुन ! यदि तुम मारे जावोगे तो स्वर्ग को प्राप्त होगे और जीतोगे तो राज्य भोग करोगे इस कारणसे दृढ़ निश्चय करके युद्ध के लिये खड़े होजावो ३७ ॥

दुःख सुख और लाभालाभ और उनके कारणीभूत जय अजय दोनों को समकर तिनके अनन्तर युद्ध के हेतु युक्तहो क्योंकि इस प्रकार से पाप को तुम न प्राप्त होगे ३८॥

उपदेश कियेहुये ज्ञानयोग को समाप्तकर कर्मयोग बताते हैं यह सांख्य उक्त बुद्धि तुमसे

बुद्ध्यायुक्तोयर्यापार्थ कर्मबन्धम्प्रहास्यसि ३९॥
नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायोनविद्यते ।
स्वल्पमप्यस्यधर्म्मस्य त्रायतेमहतोभयात् ४० ॥
व्यवसायात्मिकाबुद्धिरेकेहकुरुनन्दन ।
बहुशाखाह्यनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम् ४१॥

कहचुके अब योगकी रीतिसे कहते हैं सो हे पार्थ अर्ज्जुन! सुनो कि जिस बुद्धि के युक्त होने से तुम कर्म्मबन्ध को त्यागोगे ३९॥

इस निष्काम योगमें प्रारम्भ निष्फल नहीं और मन्त्रादि के भूलचूकसे दोष नहीं इस धर्म्मका स्वल्प अंशभी बहुतेरे भयसे रक्षा करताहै ४०॥

हे कुरुनन्दन अर्ज्जुन! इस कर्म्मयोग में अर्थात् परमेश्वर आराधन में निश्चयात्मक बुद्धि एकही होती है अव्यवसायी अर्थात् रागादि से लिप्त चित्तवालों की बुद्धि अनारूप और बहुशाखावती होती है ४१॥

यामिमांपुष्पितांवाचं प्रवदन्त्यविपश्चितः ।
वेदवादरताःपार्थ नान्यदस्तीतिवादिनः ४२ ॥
कामात्मानःस्वर्गपरा जन्मकर्म्मफलप्रदाम् ।
क्रियाविशेषबहुलां भोगैश्वर्यगतिम्प्रति ४३ ॥
भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयापहृतचेतसाम् ।

हे पार्थ अर्ज्जुन! मोहाक्रान्त अर्थात् मूर्ख लोग वेद के अर्थवाद वाक्यही में प्रीति रखतेहुये और काम अर्थ से अतिरिक्त दूसरे परमार्थ फल वेद वाक्य में नहीं ऐसे कहतेहुये ४२ ॥

कामासक्त स्वर्गही को परम पुरुषार्थ जानने वाले जन्म कर्म फलदायक भोग ऐश्वर्य प्राप्ति कि जिसमें अनेक प्रकारकी क्रिया हैं उसके प्रति नाना प्रकार के अर्थवादों से विस्तृत वाणी को कहते हैं ४३ ॥

भोग ऐश्वर्य की प्राप्ति से जिनका चित्त अपहृत है उन्हें निश्चयात्मक बुद्धि-ईश्वर प्राप्ति की

व्यवसायात्मिकाबुद्धिः समाधौनविधीयते४४ ॥
त्रैगुण्यविषयावेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन ।
निर्द्वन्द्वोनित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेमआत्मवान् ४५॥
यावानर्थ उदपाने सर्व्वतःसंप्लुतोदके ।
तावान्सर्वेषुवेदेषु ब्राह्मणस्याविजानतः ४६ ॥

नहीं उत्पन्न होती क्योंकि उनका चित्त भोगादि में सर्वदा रमता रहता है ४४ ॥

हे अर्ज्जुन! वेद त्रिगुणात्मक अर्थात् सकाम हैं तुम इसके कामादि के फलों की इच्छा छोड़ निष्कामहो निर्द्वन्द्व अर्थात् शीतादि के दुःख सुख को समान जानके धैर्य्य का आश्रय पकड़ योग क्षेमसे रहित होकर बुद्धिमान्हो ४५ ॥

जो अर्थ कूप बावली इत्यादि से निकलता है वही महानदादि से इसलिये विवेकी ब्राह्मण को सम्पूर्ण वेदसे जो कर्म फल प्रयोजन अर्थ निक-

कर्मण्येवाधिकारस्ते माफलेषुकदाचन।
माकर्म्मफलहेतुर्भूर्मातेसङ्गोऽस्त्वकर्म्मणि ४७॥
योगस्थःकुरुकर्म्माणि सङ्गंत्यक्त्वाधनञ्जय।
सिद्ध्यसिद्ध्योःसमोभूत्वासमत्वंयोगउच्यते४८॥

लता है वही उसके एक देश निष्काम वाक्य से भी निकल सक्ता है ४६॥

तुम तत्त्वज्ञान के इच्छितहो तुम्हें कर्महीमें अधिकार है भोग प्राप्ति आदिक के फल में तुम्हारी प्रवृत्ति नहीं और कर्म फल तुम्हारा प्रवर्त्तक न हो और कर्म त्याग में तुम्हारा सङ्ग न होवै ४७॥

हे धनञ्जय अर्जुन! योग अर्थात् परमेश्वर आराधन में एकाग्रचित्त हो कर्तृत्वाभिमान त्यागकर सिद्धि असिद्धि को समान जानकर कर्मकरो और योग यही कहलीता है कि सिद्धि असिद्धि में समता होनी ४८॥

दूरेणह्यवरं कर्म्म बुद्धियोगाद्धनञ्जय ।
बुद्धौ शरणमन्विच्छ कृपणाः फलहेतवः ४९ ॥
बुद्धियुक्तोजहातीह उभेसुकृतदुष्कृते ।
तस्माद्योगाययुज्यस्व योगः कर्मसुकौशलम् ५० ॥
कर्मजंबुद्धियुक्ताहि फलंत्यक्त्वामनीषिणः ।

हे धनञ्जय अर्ज्जुन ! बुद्धियोग अर्थात् व्यवसायात्मक बुद्धि से दूसरा काम्य कर्म बहुत दूर है इसलिये बुद्धि में शरण अन्वेषण करो क्योंकि फल के सब कारण कृपण अर्थात् दीन हैं ४९ ॥

इस योग में व्यवसायात्मक बुद्धि करके जो ईश्वराराधन करेगा सो सुकृत अर्थात् स्वर्गादि भोग और दुष्कृत अर्थात् नरक भोग, दोनों को त्याग करेगा इसलिये योग के हेतु उद्यम कर और कर्मों में जो कुशलता है सोई योग कहलाता है ५० ॥

व्यवसायात्मक बुद्धियुक्त मनुष्य कर्मजन्य

जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः पदंगच्छन्त्यनामयम् ५१॥
यदातेमोहकलिलं बुद्धिर्व्यतितरिष्यति।
तदागन्तासिनिर्वेदं श्रोतव्यस्यश्रुतस्यच ५२॥
श्रुतिविप्रतिपन्नाते यदास्थास्यतिनिश्चला।
समाधावचलाबुद्धिस्तदायोगमवाप्स्यसि ५३॥

स्वर्गादि रूप फल त्यागकर ज्ञानी हो जन्म मरणादि से रहित हो परमेश्वर के सर्व उपद्रव रहित स्थान को प्राप्त होते हैं ५१॥

जिस काल में देहआदि के कर्तृत्वाभिमानरूप से तुम्हारी व्यवसायात्मक बुद्धि पार होगी उस काल में तुम सुनने के योग्य और सुनेहुये अर्थ से वैराग्य को प्राप्त होगे ५२॥

नाना लौकिक अर्थ बोधक वेदवाक्यों से जब बुद्धि फिरकर अचलहो समाधि में स्थिर होगी तब योग को तू प्राप्त होगा ५३॥

॥ अर्ज्जुनउवाच ॥

स्थितप्रज्ञस्यकाभाषा समाधिस्थस्यकेशव ।
स्थितधीःकिंप्रभाषेत किमासीतव्रजेतकिम् ५४॥

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

प्रजहातियदाकामान्सर्वान्पार्थमनोगतान् ।
आत्मन्येवात्मनातुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ५५॥

अर्ज्जुन ने प्रश्न किया हे केशव ! निश्चल बुद्धि-वाले जो समाधि योग में स्थितहुये हैं उनका क्या लक्षण है और वे क्या कहते हैं और उस का आसन और चालचलन कैसा है ५४ ॥

भगवान् कहते हैं हे पार्थ अर्ज्जुन ! जिस कालमें पुरुष मनोगत सम्पूर्ण कामों को त्यागकर अपने आत्माही में मनसे सन्तुष्ट होगा तब स्थित-तप्रज्ञ कहलावेगा ५५ ॥

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषुविगतस्पृहः ।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ५६ ॥
यःसर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्यशुभाशुभम् ।
नाभिनन्दतिनद्वेष्टि तस्यप्रज्ञाप्रतिष्ठिता ५७ ॥
यदासंहरतेचायं कूर्मोङ्गानीवसर्व्वशः ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्यप्रज्ञाप्रतिष्ठिता ५८॥

दुःख प्राप्तहोने से जिसका मन खेदमें नहीं और सुखादि में इच्छारहितहो राग भय और क्रोध त्यागकरे सो स्थितप्रज्ञ मुनि कहलाताहै ५६ ॥

जो पुरुष सर्वत्र अर्थात् पुत्रादिसे स्नेह नहीं रखताहै और तिस २ शुभ अथवा अशुभ विषय को प्राप्तहोके राग द्वेष नहीं करता उस पुरुषकी प्रज्ञा समाधिमें स्थिरहै ५७ ॥

जब योगी पुरुष इन्द्रियार्थ अर्थात् शब्दादिसे इन्द्रियों को सर्व्वत्रसे खैंच लेताहै कि जैसे कछुवा

विषया विनिवर्त्तन्ते निराहारस्यदेहिनः।
रसवर्ज्जंरसोऽप्यस्य परन्दृष्ट्वानिवर्त्तते ५९ ॥
यततोह्यपिकौन्तेय पुरुषस्यविपश्चितः।
इन्द्रियाणिप्रमाथीनि हरन्तिप्रसभंमनः ६० ॥
तानिसर्वाणिसंयम्य युक्तआसीतमत्परः।

अपने अङ्गको समेट लेताहै तब उसकी प्रज्ञा समाधि में प्रतिष्ठित होती है ५८ ॥

जो पुरुष निराहार रहताहै उसकी इन्द्रियां विषयों से निवृत्त होती हैं परन्तु उसको रागादि की निवृत्ति नहीं होती और समाधिस्थ पुरुषके रागादि परमात्माके दर्शनसे निवृत्त होजातेहैं ५९॥

हे अर्ज्जुन ! विवेकी और प्रयत्न करनेवाले के भी मनको बलात्कार अर्थात् बलसे इन्द्रियां खींच लेती हैं क्योंकि इन्द्रियग्राम बलवान् है ६० ॥

इससे सब इन्द्रियों को स्वाधीन करके योगी

वशेहियस्येन्द्रियाणि तस्यप्रज्ञाप्रतिष्ठिता ६१ ॥
ध्यायतोविषयान्पुंसः सङ्गस्तेपूपजायते ।
सङ्गात्सञ्जायतेकामःकामात्क्रोधोऽभिजायते ६२
क्रोधाद्भवतिसम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः ।
स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशोबुद्धिनाशात्प्रणश्यति ६३॥

को चाहिये कि मुझसे मन लगाये रहै क्योंकि जिस पुरुषकी सम्पूर्ण इन्द्रियां वशमें हैं उसकी प्रज्ञा प्रतिष्ठित होती है ६१ ॥

जो पुरुष विषय सुखादिके ध्यानमें रहता है उसे उस विषय सुखादिकी अधिकता उत्पन्न होती है और उस अभिलाषा से काम और कामसे क्रोध उत्पन्न होता है ६२ ॥

क्रोधसे युक्तायुक्त में अविवेकता और अविवेकतासे स्मृतिभ्रम अर्थात् शास्त्र और गुरुवाक्य में भूल और स्मृतिभ्रम से बुद्धि नष्ट होती है और नष्टबुद्धि से आप नष्ट होजाता है ६३ ॥

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयाणीन्द्रियैश्चरन् ।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति ६४॥
प्रसादेसर्व्वदुःखानां हानिरस्योपजायते ।
प्रसन्नचेतसोह्याशु बुद्धिःपर्य्यवतिष्ठते ६५ ॥
नास्तिबुद्धिरयुक्तस्य नचायुक्तस्यभावना ।

जो पुरुष राग द्वेष रहित हो और अपने अधीन इन्द्रियों से विषयको अनुभव करताहै और मन जिसका अपने वशमें है वह पुरुष शान्तिको प्राप्त होता है ६४ ॥

प्रसाद भये पीछे उस पुरुषके सम्पूर्ण दुःखों की हानि होती है क्योंकि जिसका चित्त प्रसन्न भया शीघ्र उसकी बुद्धि प्रतिष्ठित होती है ६५ ॥

जिस पुरुषकी इन्द्रियां वशमें नहीं उसको शास्त्र और गुरुउपदेशकी बुद्धि अर्थात् आत्मविषयक ज्ञान नहीं और उस निर्व्वश इन्द्रियसे

नचाभावयतःशान्तिरशान्तस्यकुतःसुखम् ६६ ॥
इन्द्रियाणांहिचरतां यन्मनोऽनुविधीयते ।
तदस्यहरतिप्रज्ञां वायुर्नावमिवाम्भसि ६७ ॥
तस्माद्यस्यमहाबाहो निगृहीतानिसर्व्वशः ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्यप्रज्ञाप्रतिष्ठिता ६८॥

ध्यानभी नहीं होसक्ता और जो पुरुष ध्यान नहीं करसक्ता उसे चित्तकी शान्ति नहीं और जिसका चित्त शान्त नहीं उसे सुख अर्थात् मोक्ष आनन्द भी नहीं ६६ ॥

क्योंकि विषयासक्त इन्द्रियों के साथ जो मन भी जाताहै सोई पुरुषकी प्रज्ञा हरण करलेता है जैसे जलमें वायु नावको खैंच लेजाती है ६७॥

हे महाबाहो अर्ज्जुन ! तिससे जिस पुरुषकी इन्द्रियां अपने २ विषयों से आकर्षित होती हैं उस पुरुषकी प्रज्ञा प्रतिष्ठित कहलाती है ६८ ॥

यानिशासर्व्वभूतानां तस्यांजागर्त्तिसंयमी ।
यस्यांजाग्रतिभूतानि सानिशापश्यतोमुनेः ६९ ॥

आपूर्य्यमाणमचलप्रतिष्ठं
समुद्रमापःप्रविशन्तियद्वत् ।
तद्वत्कामायंप्रविशन्तिसर्वे
सशान्तिमाप्नोतिनकामकामी ७० ॥

अज्ञानरूप अन्धकारसे जिनकी बुद्धि आच्छादितहै उनकी रात्रिमें जितेन्द्रिय योगी जागते हैं और जिस विषयादि रूप निशामें सम्पूर्ण भूत जागतेहैं सो आत्मतत्त्वदर्शी मुनियोंकीरात्रिहै ६९॥

जैसे सब ओरसे भरेहुये समुद्र में जल आकर प्रवेश करते हैं पर वह अपनी प्रतिष्ठा से नहीं चलायमान होता वैसेही; जिस पुरुष में सम्पूर्ण विषय प्रविष्ट होते हैं और मनसे कोई विकार नहीं होता सो पुरुष मोक्षको प्राप्त होगा और विषयों की इच्छावाला पुरुष नहीं ७० ॥

विहायकामान्यःसर्वान् पुमांश्चरतिनिःस्पृहः ।
निर्ममोनिरहङ्कारस्सशान्तिमधिगच्छति ७१ ॥
एषाब्राह्मीस्थितिःपार्थ नैनांप्राप्यविमुह्यति ।
स्थित्वास्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति ७२
इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सुब्रह्मविद्यायांयो
गशास्त्रे श्रीकृष्णार्ज्जुनसंवादे साङ्ख्ययोगोनाम
द्वितीयोऽध्यायः २ ॥

जो पुरुष सम्पूर्ण कामों को त्यागकर निःस्पृहहो व्यवहार करता है और ममता और अहङ्कार से रहित सो पुरुष शान्तिको प्राप्तहोताहै ७१॥

हे पार्थ अर्ज्जुन ! यह ब्रह्मज्ञान की निष्टाहै इस निष्टा को जो मरणकाल में भी प्राप्त होगा उसे संसारी मोह न होगा और जो पुरुष पहिले से मरणसमय तक इसका अभ्यास करेगा सो मोक्षपद को प्राप्तहोगा यह क्या कहना है ७२॥

सांख्ययोगनिरूपण दूसराअध्याय समाप्तहुआ २॥

॥ तृतीय अध्याय ॥

॥ अर्ज्जुनउवाच ॥

ज्यायसीचेत्कर्म्मणस्ते मताबुद्धिर्जनार्दन ।
तत्किंकर्मणिघोरेमां नियोजयसि केशव १ ॥
व्यामिश्रेणैववाक्येन बुद्धिंमोहयसीव मे ।
तदेकंवदनिश्चित्ययेनश्रेयोऽहमाप्नुयाम् २ ॥

अर्ज्जुन प्रश्न करते हैं कि हे जनार्दन श्रीकृष्ण ! यदि कर्मसे बुद्धि श्रेष्ठहै तो हे केशव ! मुझको क्यों घोर कर्म में प्रवृत्त करतेहो १ ॥

कर्म और बुद्धि मिश्रित वाक्य से मेरी बुद्धि को मोहतेहो इसलिये दोनों में से एक को निश्चय करके कहो कि जिससे मैं कल्याण को प्राप्तहूं २ ॥

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

लोकेऽस्मिन्द्विविधा निष्ठा पुराप्रोक्ता मयानघ ।
ज्ञानसाङ्ख्येनयोगानां कर्मयोगेन योगिनाम् ३ ॥
न कर्म्मणामनारम्भान्नैष्कर्म्यंपुरुषोश्नुते ।
नचसंन्यसनादेव सिद्धिंसमधिगच्छति ४ ॥
नहिकश्चित्क्षणमपिजातुतिष्ठत्यकर्म्मकृत् ।

भगवान् उत्तर देते हैं हे अनघ अर्थात् कल्मषरहित अर्ज्जुन! इन अधिकारी जनों के हेतु पूर्व अध्याय में मैंने दो प्रकार की निष्ठा कही सांख्यवाले को ज्ञानयोग और योगमतवाले को कर्मयोग, वर्णन किया ३ ॥

विना कर्म के आरम्भ पुरुष ज्ञान को नहीं प्राप्त होता वैसेही विना कर्म संन्यासग्रहण किये से भी मोक्ष को नहीं प्राप्तहोता ४ ॥

कोई पुरुष किसी अवस्था में विना कर्म किये क्षणभर भी नहीं ठहर सक्ता क्योंकि सम्पूर्ण

कार्य्यतेह्यवशःकर्म्म सर्व्वंप्रकृतिजैर्गुणैः ५ ॥
कर्म्मेन्द्रियाणिसंयम्य यआस्तेमनसास्मरन् ।
इन्द्रियार्थान्विमूढात्मामिथ्याचारःसउच्यते ६ ॥
यस्त्विन्द्रियाणिमनसा नियम्यारभतेर्जुन ।
कर्मेन्द्रियैःकर्मयोगमसक्तःसविशिष्यते ७ ॥
नियतंकुरुकर्म्मत्वं कर्म्मज्यायोह्यकर्म्मणः ।

उन प्रकृतिजन्य स्वाभाविक रागादि गुणों से परवशहो कर्म में प्रवृत्त भयेजाते हैं ५ ॥

जो पुरुष कर्मेन्द्रियों को रोक मन से विषयों का स्मरण करता रहता है सो मूढात्मा और कपटीचार कहलाता है ६ ॥

हे अर्जुन ! पुरुष ज्ञानेन्द्रियों को मनके साथ रोक कर कर्मेन्द्रियों से कर्मफलकी आशा छोड़ कर कर्म योग आरम्भ करताहै सो ज्ञानवान्है ७॥

तुम नित्य वर्णाश्रम कर्म करो क्योंकि अ कर्म

शरीरयात्रापिचतेन प्रसिद्ध्येदकर्म्मणः ८ ॥
यज्ञार्थात्कर्म्मणोन्यत्र लोकोयंकर्म्मबन्धनः ।
तदर्थंकर्मकौन्तेय मुक्तसङ्गःसमाचर ९ ॥
सहयज्ञाःप्रजाःसृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः ।
अनेनप्रसविष्यध्वमेषवोस्त्विष्टकामधुक् १० ॥

से कर्म श्रेष्ठहै यदि तुम कर्म न करोगे तो शरी-रान्त में गति भी सिद्ध न होगी ८ ॥

ईश्वरनिमित्त कर्म से अतिरिक्त कर्म इस लोक के लिये बन्धनहै इसलिये हे अर्जुन ! मुक्त-सङ्गहो अर्थात् विषयइच्छारहित होकर कर्म करो ९ ॥

स्वर्ग आदिमें प्रजापति ब्रह्मा यज्ञकरनेवाले ब्राह्मणादि प्रजाको उत्पन्न करके कहते भये कि इस यज्ञ से तुम लोग उत्पत्तिकरो यही यज्ञ तुम लोगों को सम्पूर्ण इच्छा देनेवालाहै १० ॥

देवान्भावयतानेन तेदेवाभावयन्तुवः । ६
परस्परंभावयन्तः श्रेयःपरमवाप्स्यथ ११ ॥
इष्टान्भोगान्हिवोदेवा दास्यन्तेयज्ञभाविताः ।
तैर्द्त्तानप्रदायैभ्यो योभुङ्क्तेस्तेनएवसः १२ ॥
यज्ञाशिष्टाशिनःसन्तो मुच्यन्तेसर्वकिल्विषैः ।

इस यज्ञ करके देवतों की हवि भोगादि से पूजाकरो और देवता लोग वृष्टि आदि से तुम्हारी पालना करेंगे इस परस्पर भावनासे तुमलोग उत्तम मङ्गल को प्राप्तहोगे ११ ॥

यज्ञ करके पूजित देवता लोग तुम लोगों को सम्पूर्ण भोगादि देंगे उन देवतों से जो अन्न मिला है उसे पञ्चयज्ञादि से दूसरे को न देकर जो भोजन करेगा सो चोरहै १२ ॥

वैश्वदेवादि यज्ञ से बचाहुआ शेष जो लोग भोजन करते हैं वे सम्पूर्ण पापसे मुक्त होते हैं

भुञ्जतेतेत्वघापापा येपचन्त्यात्मकारणात् १३ ॥
अन्नाद्भवन्तिभूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः ।
यज्ञाद्भवतिपर्जन्यो यज्ञःकर्मसमुद्भवः १४ ॥
कर्मब्रह्मोद्भवंविद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम् ।
तस्मात्सर्वगतंब्रह्म नित्यंयज्ञेप्रतिष्ठितम् १५ ॥
एवंप्रवर्तितंचक्रं नानुवर्त्तयतीहयः ।

और जे दुराचारी अपने पेटके हेतु पाप करते हैं वे पापही भोग करेंगे १३ ॥

अन्न से सम्पूर्ण भूत उत्पन्न होते हैं और अन्न वृष्टि से और वृष्टि यज्ञ से होती है और यज्ञ कर्म से होता है १४ ॥

कर्म वेद से उत्पन्न भया और वेद अक्षर-रूप परब्रह्म से इसलिये उस सर्वगत ब्रह्मको सर्वदा यज्ञ में प्रतिष्ठित जानो १५ ॥

हे पार्थ अर्जुन ! पूर्वोक्त चक्र इस प्रकार से मैंने प्रवृत्त किया है जो पुरुष इस लोक में उसके

अघायुरिन्द्रियारामोमोघंपार्थसजीवति १६ ॥
यस्त्वात्मरतिरेवस्यादात्मतृप्तश्चमानवः ।
आत्मन्येवचसन्तुष्टस्तस्यकार्यंनविद्यते १७ ॥
नैवतस्यकृतेनार्थो नाकृतेनेहकश्चन ।
नचास्यसर्वभूतेषु कश्चिदर्थव्यपाश्रयः १८ ॥

अनुसार नहीं चलता सो पापजीवी और विषयासक्तहै और जीवन उसका व्यर्थ है १६ ॥

जो पुरुष आत्माही से प्रीति रखता है आत्माही में अर्थात् ब्रह्मानन्द से तृप्त भी रहता और आत्माही में भोगादि से अपेक्षारहित हो सन्तुष्ट होता है उस पुरुष के लिये कुछ कार्य्य अवशेष नहीं १७ ॥

ऐसे पुरुष को न कुछ पुण्य करने से अर्थ है न पाप से, और उसको सम्पूर्ण भूतों से किसी अर्थ का वियोग भी नहीं १८ ॥

तस्मादसक्तःसततं कार्य्यंकर्मसमाचर ।
असक्तोह्याचरन्कर्म्म परमाप्नोतिपूरुषः १९ ॥
कर्म्मणैवहिसंसिद्धिमास्थिताजनकादयः ।
लोकसंग्रहमेवापि सम्पश्यन्कर्तुमर्हसि २० ॥
यद्यदाचरतिश्रेष्ठस्तत्तदेवेतरोजनः ।
सयत्प्रमाणंकुरुते लोकस्तदनुवर्त्तते २१ ॥

इस लिये फलकी इच्छासे रहितहो सर्व्वदा तुम योगकर्म में प्रवृत्तहो क्योंकि भोगादि से इच्छा रहित होकर जो पुरुष कर्म करता है सो मोक्षको प्राप्त होता है १९ ॥

जनकादिक ज्ञानीलोग कर्महीं करने से मोक्ष को प्राप्तभये और तुम अच्छी भांतिसे देखकर लोकसंग्रह के हेतु भी कर्म करने के योग्य हो। २०॥

क्योंकि उत्तम लोग जो जो कर्माचरण करते हैं इतर लोगभी उसीका आचरण करते हैं और उत्तम लोग जिसका प्रमाण मानते हैं संसारी

नमेपार्थोस्तिकर्तव्यं त्रिषुलोकेषुकिञ्चन ।
नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त्तएवचकर्म्मणि २२ ॥
यदिह्यहंनवर्त्तेयं जातुकर्म्मण्यतन्द्रितः ।
ममवर्त्मानुवर्त्तन्ते मनुष्याःपार्थसर्वशः २३ ॥
उत्सीदेयुरिमेलोकानकुर्यांकर्म्मचेदहम् ।

लोग भी उसी के अनुसार चलते हैं २१ ॥

हे पार्थ अर्जुन ! मुझको तीनों लोक में किंचित् कुछ कर्त्तव्य नहीं है और न कोई अप्राप्त वस्तु कर्म से प्राप्त करने के योग्य है तिसपर भी मैं कर्म में प्रवृत्तही हों २२ ॥

यदि हम कदाचित् आलस्यरहित होकर कर्म में प्रवृत्त न हों तो हे पार्थ अर्जुन ! सम्पूर्ण मनुष्य हमारेही मार्ग के अनुसार हो कर्म त्याग करेंगे २३ ॥

यह लोग कर्म लोप होने से नष्ट होजायँगे

शङ्करस्यचकर्त्तास्यामुपहन्यामिमाःप्रजाः २४ ॥
सक्ताःकर्म्मण्यविद्वांसो यथाकुर्व्वन्तिभारत ।
कुर्य्याद्विद्वांस्तथासक्तश्चिकीर्षुर्लोकसंग्रहम् २५ ॥
नबुद्धिभेदंजनयेदज्ञानांकर्मसंगिनाम् ।
जोपयेत्सर्व्वकर्माणिविद्वान्युक्तःसमाचरन् २६ ॥

यदि हम कर्म न करें और वर्णसङ्कर के कर्त्ता हमीं हों तो इस से इन प्रजाओं को नष्ट करेंगे २४ ॥

हे पार्थ अर्जुन ! जैसे मूर्ख लोग कर्म करने की इच्छा से प्रवृत्त होकर कर्म करते हैं वैसेही पण्डित लोग उसे असक्त होकर लोकसंग्रह के हेतु कर्म करें २५ ॥

कर्मासक्त मूर्खों को बुद्धिका भेद न जनना चाहिये विवेकी लोगों को उचित है कि आप कर्म करके उनसे सम्पूर्ण कर्म करावें २६ ॥

प्रकृतेःक्रियमाणानि गुणैःकर्माणिसर्वशः ।
अहङ्कारविमूढात्मा कर्त्ताहमितिमन्यते २७ ॥
तत्त्ववित्तुमहाबाहो गुणकर्मविभागयोः ।
गुणागुणेषुवर्त्तन्ते इतिमत्वानसज्जते २८ ॥
प्रकृतेर्गुणसम्मूढासज्जन्तेगुणकर्मसु ।

प्रकृति के गुण इन्द्रियादि करके सम्पूर्ण क्रियमाण कर्मों को मूढ़लोग जिनकी बुद्धि अहङ्कार से मोहित है वे जानते हैं कि हम करनेवाले हैं २७ ॥

हे महाबाहो अर्जुन ! विवेकी पुरुष अपने को इन्द्रियादि और कर्मों से अलग जानकर अपने में अहङ्कार नहीं आरोप करते क्योंकि वह जानता है कि इन्द्रियां अपने २ विषय में आपही सर्वदा प्रवृत्त हैं २८ ॥

प्रवृत्ति के सत्त्वादि तीनों गुणों से मूर्ख लोग

तानकृत्स्नविदोमन्दान्कृत्स्नविन्नविचालयेत्२६॥
मयिसर्वाणिकर्माणि संन्यस्याध्यात्मचेतसा ।
निराशीर्निर्ममोभूत्वा युध्यस्वविगतज्वरः ३०॥
येमेमतमिदंनित्यमनुतिष्ठन्तिमानवाः ।
श्रद्धावन्तोनसूयन्तो मुच्यन्तेतेऽपिकर्मभिः ३१॥
येत्वेतदभ्यसूयन्तो नानुतिष्ठन्तिमेमतम् ।

मोहित हो इन्द्रिय और देहेन्द्रिय के व्यापार में अभिमान में प्रवृत्त हैं इसलिये विवेकियों को उचित है कि बुद्धिभेद में उन्हें न प्रवृत्त करें २९॥

सम्पूर्ण कर्मों का मुझी में ईश्वराधीन बुद्धि से समर्पण करके कर्मफल से आशा और समता रहित हो शोक को छोड़ युद्ध करो ३० ॥

जो मनुष्य मेरे इसमत के अनुसार श्रद्धापूर्वक और निन्दारहित होकर चलते हैं वे लोग ज्ञानी की नाईं कर्मबन्ध से मुक्त होते हैं ३१ ॥

जो लोग इस मेरे मत की निन्दा करते हैं

सर्वज्ञानविमूढांस्तान्विद्धिनष्टानचेतसः ३२ ॥
सदृशंचेष्टतेस्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि ।
प्रकृतिंयान्तिभूतानि निग्रहःकिंकरिष्यति ३३ ॥
इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौव्यवस्थितौ ।
तयोर्नवशमागच्छेत्तौह्यस्यपरिपन्थिनौ ३४ ॥

और इसके अनुसार नहीं चलते उन्हें जानों कि वे सम्पूर्ण ज्ञान से रहित और मृतक के तुल्य और विवेकरहित हैं ३२ ॥

ज्ञानीलोग भी अपने पुरातन कर्माधीन स्वभावही के अनुसार चले जाते हैं और सब प्राणी भी उसी स्वभाव के अनुसार चलेजाते हैं क्योंकि प्रकृति सब से बलवती है वहां इन्द्रिय रोकने से क्या होगा ३३ ॥

प्रति इन्द्रियों में उनके विषय अनुकूलता से राग और प्रतिकूलता से द्वेष दोनों अवश्य रहते हैं इसलिये इन दोनों के वश न होना चाहिये

श्रेयान्स्वधर्मोविगुणःपरधर्मात्स्वनुष्ठितात् ।
स्वधर्मोनिधनंश्रेयः परधर्मोभयावहः ३५ ॥

॥ अर्जुनउवाच ॥

अथकेनप्रयुक्तोऽयं पापंचरतिपूरुषः ।
अनिच्छन्नपिवार्ष्णेय बलादिवनियोजितः ३६॥

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

कामएषक्रोधएष रजोगुणसमुद्भवः ।

क्योंकि ये निश्चित पुरुष के शत्रु हैं ३४ ॥

अपना धर्म यद्यपि न्यून भी हो तो परधर्म से शुभहै कि जिसका अच्छी भांति से आचरण किया गयाहै क्योंकि अपने धर्म से मरना भला है भयानक परधर्म से ३५ ॥

अर्जुन प्रश्न करते हैं हे वार्ष्णेय यदुपति ! जो पुरुष कामादि से अनिच्छित है उसे किसने नियुक्त पुरुष की नाईं पाप में प्रवृत्त कियाहै ३६ ॥

श्रीकृष्णचन्द्र उत्तर देते हैं जिसको तुम

महाशनोमहापाप्माविद्ध्येनमिहवैरिणम् ३७ ॥
धूमेनाम्रियतेवह्निर्यथादर्शोमलेनच ।
यथोल्बेनावृतोगर्भस्तथातेनेदमावृतम् ३८ ॥
आवृतंज्ञानमेतेन ज्ञानिनोनित्यवैरिणा ।
कामरूपेणकौन्तेय दुष्पूरेणानलेनच ३९ ॥

पूँछते हो सो काम और क्रोधहैं और राजसगुण करके उत्पन्न होते महाभक्षक और पापी हैं इस मोक्षमार्ग में इन्हें शत्रु कर जानो ३७ ॥

जैसे धुवां से आग और मल से दर्पण और उल्व अर्थात् गर्भवेष्टन चर्म्म से गर्भ घेरा है वैसेही काम और क्रोध से सम्पूर्ण जगत् घेरा हुआ है ३८ ॥

हे अर्जुन ! इस नित्य वैरी कामने ज्ञानियों का ज्ञान घेर रक्खा है और यह सर्व्वदा आग की नाईं अतृप्त है ३९ ॥

इन्द्रियाणिमनोबुद्धिरस्याधिष्ठानमुच्यते ।
एतैर्विमोहयत्येष ज्ञानमावृत्यदेहिनम् ४० ॥
तस्मात्त्वमिन्द्रियाण्यादौ नियम्यभरतर्षभ ।
पाप्मानंप्रजहेनं ज्ञानविज्ञाननाशनम् ४१
इन्द्रियाणिपराण्याहुरिन्द्रियेभ्यःपरम्मनः ।

सम्पूर्ण इन्द्रियां मन बुद्धि आदि इस काम के स्थान कहलाते हैं वह इन इन्द्रियों से ज्ञान से घेरकर देही अर्थात् आत्मा को मोह लेता है ४० ॥

हे अर्जुन ! इसलिये तुम मोह प्राप्त होने से पहिले सम्पूर्ण इन्द्रियों को रोककर इस पापी काम को जीतो क्योंकि यह शास्त्र और गुरूप-देश ज्ञान और विज्ञान अर्थात् तत्त्वज्ञान इन दोनों का नाशक है ४१ ॥

कहते हैं कि दोनों इन्द्रियां देहादि से श्रेष्ठ

मनसस्तुपराबुद्धिर्योबुद्धेःपरतस्तुसः ४२ ॥
एवंबुद्धेःपरंबुद्ध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना ।
जहिशत्रुंमहाबाहो कामरूपंदुरासदम् ४३ ॥
इति श्रीमन्महाभारते शतसहस्रसंहितायां वैया-
सिक्यांभीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु
ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे
कर्मयोगोनामतृतीयोऽध्यायः ३ ॥

और इन्द्रियों से श्रेष्ठ मन और मन से श्रेष्ठ निश्चयात्मक बुद्धि है और जो बुद्धि से भी परे है वही परमेश्वर है ४२ ॥

हे महाबाहो अर्ज्जुन ! बुद्धिका साक्षी ईश्वर को जानकर संशयात्मक मनको निश्चयात्मक बुद्धिसे रोककर अजित कामरूपी शत्रुको पराजय करो ४३ ॥

कर्मयोगप्रतिपादक तीसराअध्याय समाप्तहुआ ३ ॥

चतुर्थ अध्याय ॥

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

इमंविवस्वतेयोगं प्रोक्तवानहमव्ययम् ।
विवस्वान्मनवेप्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत् १ ॥
एवंपरंपराप्राप्तमिमंराजर्षयोविदुः ।
सकालेनेहमहता योगोनष्टःपरन्तप २ ॥

श्रीभगवान्जी कहते हैं कि यह अविनाशी योग पहिले हमने सूर्य्य से कहा और सूर्य्य ने मनुसे फिर मनुने अपने पुत्र इक्ष्वाकुराजा से निरूपण किया १ ॥

हे परन्तप "अर्ज्जुन"! इसी प्रकार से यह परम्परायोग चलाआता है राजऋपि और राजा लोग जानते रहे सो योग बहुत काल से नष्टप्राय होरहा है २ ॥

सएवायंमयातेद्य योगःप्रोक्तःपुरातनः ।
भक्तोसिमेसखाचेति रहस्यंह्येतदुत्तमम् ३ ॥

अर्ज्जुनउवाच ॥

अपरंभवतोजन्म परंजन्मविवस्वतः ।
कथमेतद्विजानीयां त्वमादौप्रोक्तवानिति ४ ॥

जो हमने तुम से कहा सो वही पुरातन योग है अतिगोपनीय और उत्तम है तुम मेरे भक्त और सखा भी हो इसलिये तुम से निरूपण किया ३ ॥

अर्ज्जुन प्रश्न करते हैं कि तुम्हारा जन्म पीछे है और सूर्य्यका जन्म तुम से पहिले तो तुमने पहिले सूर्य्य से यह योग क्योंकर कहा यह मुझे बतावो ४ ॥

श्रीभगवानुवाच ॥

बहूनिमेव्यतीतानि जन्मानितवचार्ज्जुन ।
नान्यहंवेदसर्व्वाणि नत्वंवेत्थपरन्तप ५ ॥
अजोऽपिसन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपिसन् ॥
प्रकृतिंस्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया ६ ॥

श्रीभगवान् उत्तर देते हैं कि हे अर्ज्जुन! मेरे और तुम्हारे बहुत से जन्म व्यतीत भये हैं सो मैं जानताहूं और तुम नहीं जानते ५ ॥

हम उत्पत्तिरहित अविनाशी और सम्पूर्ण भूतों के ईश्वर हैं तथापि हम अपनी शुद्ध सात्विक प्रकृति को स्वीकार करके अपनी माया से उत्पन्न होते हैं ६ ॥

यदायदाहिधर्म्मस्य ग्लानिर्भवतिभारत ।
अभ्युत्थानमधर्म्मस्य तदात्मानंसृजाम्यहम् ७ ॥
परित्राणायसाधूनां विनाशायचदुष्कृताम् ।
धर्म्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामियुगेयुगे ८ ॥
जन्मकर्म्मचमेदिव्यमेवंयोवेत्तितत्त्वतः ।
त्यक्त्वादेहंपुनर्ज्जन्म नैतिमामेतिसोऽर्ज्जुन ९ ॥

हे अर्जुन ! जब जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है तब तब मैं अवतार लेताहूं ७ ॥

सम्पूर्ण साधुओं के रक्षण के हेतु और दुष्टों के नाश करने और धर्मसंस्थापन करने के लिये सब युगों में जन्म लेताहूं ८ ॥

हे अर्ज्जुन ! इस प्रकार से जो मेरा उत्कृष्ट जन्म और कर्म्म यथार्थ करके जानता है सो देह त्यागकर जन्म नहीं पाता और मुझ में प्राप्त होता है ९ ॥

वीतरागभयक्रोधा मन्मयामामुपाश्रिताः ।
वहवोज्ञानतपसा पूतामद्भावमागताः १० ॥
येयथामांप्रपद्यन्ते तांस्तथैवभजाम्यहम् ।
ममवर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याःपार्थसर्वशः ११ ॥

वहुत से लोग राग भय और क्रोध से रहित होकर मुझमें चित्त लगाकर मेरे शरण आकर और ज्ञानरूप तप करके पवित्र हो मेरेही भाव को प्राप्तभये हैं १० ॥

हे अर्ज्जुन ! जो लोग जैसे अर्थात् सकाम या निष्काम मेरे शरणागत होते हैं उनको उसी के अनुसार फल देकर उनकी रक्षा करताहूं क्योंकि सव मनुष्य मेरेही मार्ग के अनुसार चलते हैं ११ ॥

काङ्क्षन्तःकर्मणांसिद्धिं यजन्तइहदेवताः ।
क्षिप्रंहिमानुषेलोके सिद्धिर्भवतिकर्मजा १२ ॥
चातुर्वर्ण्यंम्मयासृष्टं गुणकर्मविभागशः ।
तस्यकर्त्तारमपिमां विद्धयकर्तारमव्ययम् १३ ॥
नमांकर्माणिलिम्पन्ति नमेकर्मफलेस्पृहा ।
इतिमांयोऽभिजानाति कर्मभिर्नसवध्यते १४ ॥

जो इस लोक में फल की इच्छा से देवतों की आराधना करते हैं उन्हें कर्म फलकी सिद्धि मर्त्यलोक में शीघ्र होती है १२ ॥

चारों वर्ण की सृष्टि उन के सात्त्विकादि गुण और कर्म्मभेद से मैंने की है इस हेतु से सृष्टिका मैं कर्त्ताहूं और मैं अविनाशी फलकी अपेक्षा से रहित हूं इस से मुझे अकर्त्ता भी जानो १३ ॥

सम्पूर्ण कर्म्म मुझको आसक्त नहीं करसक्ते क्योंकि मुझे कर्म्मफल की इच्छा नहीं ऐसा जो

एवंज्ञात्वाकृतंकर्म पूर्वैरपिमुमुक्षुभिः ।
कुरुकर्मैवतस्मात्त्वं पूर्वैःपूर्वतरंकृतम् १५ ॥
किंकर्मकिमकर्मेति कवयोप्यत्रमोहिताः ।
तत्तेकर्मप्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वामोक्ष्यसेऽशुभात् १६

पुरुष मुझको जानता है सो कर्म्मों करके बद्ध नहीं होता १४ ॥

पुरातन जनकादि मुमुक्षु अर्थात् मोक्षकी इच्छावाले पुरुषों ने ऐसा जानकर सत्त्वशुद्धि के हेतु कर्म किया है और युगान्तरमें भी प्राचीन लोगों ने कर्म किये हैं इसलिये तुम भी कर्म में प्रवृत्तहो १५ ॥

कौन कर्म करने के योग्य है और कौन नहीं इस में विवेकी लोग भी मोहको प्राप्तहोते हैं सो मैं तुमसे कहताहूं जिसके जानने से अशुभ अर्थात् संसार से मुक्त होजावोगे १६ ॥

कर्मणोह्यपिबोद्धव्यं बोद्धव्यंचविकर्मणः ।
अकर्मणश्चबोद्धव्यं गहनाकर्मणोगतिः १७ ॥
कर्मण्यकर्मयःपश्येदकर्मणिचकर्मयः ।
सबुद्धिमान्मनुष्येषु सयुक्तःकृत्स्नकर्मकृत् १८ ॥

शास्त्रविहित कर्म और निषिद्ध कर्म और त्यागयोग्य कर्मोंको भी जानना चाहिये क्योंकि कर्मगति कष्ट से भी जानने के योग्य नहीं १७ ॥

जो पुरुष विहितकर्मों में से जानता है कि यह कर्म करने के योग्य नहीं और अन्य कर्मों में से जानता है कि यह करने के योग्य है क्योंकि उसे लौकिक रागादि फल की अपेक्षा नहीं सो पुरुष सम्पूर्णकर्मकरनेवाले मनुष्यों में से पण्डित है इसलिये कि सब कर्मकर्त्ता है १८ ॥

यस्यसर्व्वेसमारम्भाः कामसंकल्पवर्जिताः ।
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुःपण्डितंबुधाः १६ ॥
त्यक्त्वाकर्मफलासङ्गं नित्यतृप्तोनिराश्रयः ।
कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपिनैवकिञ्चित्करोतिसः २० ॥
निराशीर्यतचित्तात्मा त्यक्तसर्वपरिग्रहः ।
शारीरंकेवलंकर्म कुर्वन्नाप्नोतिकिल्बिषम् २१ ॥

जिस पुरुष के सम्पूर्ण कर्म काम और सङ्कल्प से रहित हैं और जिसने ज्ञानरूपी अग्नि में सब कर्मों को दग्ध कर दिये उसे विवेकी लोग पण्डित कहते हैं १९ ॥

जो पुरुष कर्मफलकी इच्छा छोड़ नित्यानन्द से तृप्त और निराश्रय रहता है यद्यपि कर्मों में प्रवृत्तहो तथापि कुछ भी नहीं करता २० ॥

जो पुरुष कामनादि से रहित हो चित्त और शरीर को स्वाधीन कर सर्व परिग्रह को त्याग

यदृच्छालाभसंतुष्टो द्वन्द्वातीतोविमत्सरः ।
समःसिद्धावसिद्धौच कृत्वापिननिबध्यते २२ ॥
गतसङ्गस्यमुक्तस्य ज्ञानावस्थितचेतसः ।
यज्ञायाचरतःकर्म समग्रंप्रविलीयते २३ ॥

करता है सो केवल शरीररक्षण हेतु कर्म करने से क्लेश को नहीं प्राप्त होता २१ ॥

जो पुरुष विना जांचे हुये लोभ से सन्तुष्ट रहता और शीतोष्णादि दुःखों को समान जानता और सम्पूर्ण भूतों से निर्वैर रहता और हर्ष विषाद को सम देखता है सो कर्म से बन्धको नहीं प्राप्त होता २२ ॥

जो पुरुष सङ्ग अर्थात् रागादि से रहित और मुक्त है और ज्ञान में उसका चित्त स्थिर रहता और ईश्वराराधन के हेतु कर्म करता है सो वासनासहित सम्पूर्ण कर्मों से मुक्त हो-जाता है २३ ॥

ब्रह्मार्पणंब्रह्महविर्ब्रह्माग्नौब्रह्मणाहुतम् ।
ब्रह्मैवतेनगन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना २४ ॥
दैवमेवापरेयज्ञं योगिनःपर्युपासते ।
ब्रह्माग्नावपरेयज्ञं यज्ञेनैवोपजुह्वति २५ ॥
श्रोत्रादीनीन्द्रियाण्यन्ये संयमाग्निषुजुह्वति ॥
शब्दादीन्विषयानन्ये इन्द्रियाग्निषुजुह्वति २६ ॥

जो पुरुष होम के पात्र और द्रव्य घृतादि अग्नि हवनकर्त्ता और क्रिया सम्पूर्ण वस्तु को ब्रह्महीं जानता है उसको ब्रह्म से अतिरिक्त अन्य वस्तु प्राप्त करने के योग्य नहीं २४ ॥

कर्मयोगकरनेवाले देवतादिक के हेतु हवनादि उपासना करते हैं और ज्ञानयोगकरनेवाले ज्ञान की अग्नि में हवनादि कर्म ब्रह्मार्पण बुद्धि से लय करते हैं २५ ॥

और नैष्ठिक ब्रह्मचारी पुरुष श्रोत्रादि ज्ञाने-

सर्वाणीन्द्रियकर्माणि प्राणकर्माणिचापरे ।
आत्मसंयमयोगाग्नौ जुह्वतिज्ञानदीपिते २७ ॥
द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथापरे ।
स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च यतयःशंसितव्रताः २८॥

न्द्रियों को संयमरूपी अग्नि में लय करते हैं और गृहस्थाश्रमी शब्दादि विषयोंको इन्द्रियादि अग्नि में लय करते हैं २६ ॥

ध्यानावस्थित लोग संम्पूर्ण इन्द्रियों के व्यवहार को अपने २ ग्राहक इन्द्रियों में अर्पण करके मन संयम अर्थात् मन की एकाग्रता रूपी अग्निमें जो ज्ञानसे प्रकाशित हैं उसमें लय करते हैं २७॥

कोई तो द्रव्य से यज्ञ करता है कोई तप से कोई योगाभ्यास से यज्ञ अर्थात् आराधन करता है कोई वेदाध्ययन और मनरूपी यज्ञ से और कोई ज्ञानयज्ञ से परन्तु यती लोग अपने स्वभाव से निश्चित हो उपासना करते हैं २८ ॥

अपानेजुह्वतिप्राणं प्राणेपानंतथापरे ।
प्राणापानगतीरुद्ध्वा प्राणायामपरायणाः २९॥
अपरेनियताहाराः प्राणान्प्राणेषुजुह्वति ।
सर्वेप्येतेयज्ञविदो यज्ञक्षपितकल्मषाः ३० ॥
यज्ञशिष्टामृतभुजो यान्तिब्रह्मसनातनम् ।
नायंलोकोऽस्त्ययज्ञस्यकुतोऽन्यःकुरुसत्तम ३१॥

कोई अपान में प्राणपूरकमार्ग से लय करता है कोई प्राण के अपान को रेचकमार्ग से योंही कोई प्राण और अपान की गति कुम्भक से रोकके प्राणायामशील होते हैं २९ ॥

कोई आहार घटाने से इन्द्रियों के व्यापारको उनकी इन्द्रियों में होम करता है ऐसे ये सब यज्ञ जाननेवाले यज्ञकर क्लेशरहित होते हैं ३० ॥

हे अर्जुन ! यज्ञ समाप्त-करके अवशिष्ट काल में जो अमृतसंज्ञित-अन्नको भक्षण करता है सो

एवंबहुविधायंज्ञा विततात्रह्मणोमुखे ।
कर्मजान्विद्धितान्सर्वानेवंज्ञात्वाविमोक्ष्यसे ३२॥
श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञःपरन्तप ।
सर्वंकर्माखिलंपार्थ ज्ञानेपरिसमाप्यते ३३ ॥

सनातन ब्रह्मको प्राप्त होता है और जो यज्ञ नहीं करता उसे मर्त्यलोकही नहीं प्राप्त होता परलोक कब मिलेगा ३१ ॥

वेद में विस्तार से अनेक प्रकारके यज्ञ इस प्रकारसे कहे हैं वे सम्पूर्ण यज्ञ मन वाचा और कर्म से जनित जानो क्योंकि परमेश्वर केवल ज्ञानमात्र गोचर हैं और यज्ञ चित्त शुद्धिद्वारा ज्ञान उपयोगी यज्ञ जानकर संसार से मुक्तहो ३२ ॥

हे अर्जुन ! द्रव्यमय यज्ञ से ज्ञानयज्ञ श्रेष्ठ है क्योंकि सम्पूर्णकर्म फल सहित ज्ञानही में समाप्त होते हैं ३३ ॥

तद्विद्धिप्रणिपातेन परिप्रश्नेनसेवया ।
उपदेक्ष्यन्तितेज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ३४ ॥
यज्ज्ञात्वानपुनर्मोहमेवंयास्यसिपाण्डव ।
येनभूतान्यशेषेण द्रक्ष्यस्यात्मन्यथोमयि ३५ ॥
अपिचेदसिपापेभ्यस्सर्वेभ्यःपापकृत्तमः ।
सर्वंज्ञानप्लवेनैव वृजिनंसन्तरिष्यसि ३६ ॥

दण्डवत् प्रश्न और सेवा करके उस ज्ञानको प्राप्तहो तो वे ज्ञानीलोग तुमको उपदेश करेंगे क्योंकि वे सर्वदा तत्त्वही के विचारमें रहते हैं ३४॥

हे पाण्डव अर्जुन ! जिस ज्ञानको यों जान कर बन्धनिमित्त मोहको फिर न प्राप्त होगे और इस ज्ञान से सम्पूर्ण भूतों को मुझ परमात्मा में देखोगे ॥ ३५ ॥

यदि तुम सब पापों से अधिक पापकरनेवाले हो तो भी सम्पूर्ण पापरूपी समुद्र को ज्ञानरूपी नौका से तर जावोगे ३६ ॥

यथैधांसिसमिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन ।
ज्ञानाग्निस्सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुतेतथा ३७ ॥
नहिज्ञानेनसदृशं पवित्रमिहविद्यते ।
तत्स्वयंयोगसंसिद्धःकालेनात्मनिविन्दति ३८ ॥
श्रद्धावाँल्लभतेज्ञानं तत्परःसंयतेन्द्रियः ।
ज्ञानंलब्ध्वापरांशान्तिमचिरेणाधिगच्छति ३९ ॥

हे अर्जुन ! जैसे जलतीहुई अग्नि लकड़ियों को भस्म कर डालती है वैसेही ज्ञानरूपी अग्नि सम्पूर्ण बन्धहेतु कर्मोंको भस्म करदेती है ३७ ॥

ज्ञानके सदृश दूसरी वस्तु इस लोक में तप योगादि नहीं क्योंकि किसी काल में योगाभ्यास से आत्मामें अनायासकरके आपही प्राप्तहोंगे ३८ ॥

गुरु उपदिष्ट वाक्य में श्रद्धावान् विचारशील और इन्द्रियवश पुरुष ज्ञानको प्राप्त होताहै और ज्ञान प्राप्त होने से परममोक्षको प्राप्त होताहै ३९ ॥

यज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संशयात्माविनश्यति ।
नायंलोकोस्तिनपरो नसुखंसंशयात्मनः ४० ॥
योगसंन्यस्तकर्माणं ज्ञानसंछिन्नसंशयम् ।
आत्मवन्तन्नकर्माणि निबध्ननन्तिधनञ्जय ४१ ॥

जो पुरुष गुरुवाक्य को नहीं जानता और अश्रद्धावान् और संशयात्मक बुद्धिवाला है सो नाश को प्राप्त होता है और उसे इसलोक और परलोक में सुख भी नहीं मिलता ४० ॥

हे धनञ्जय अर्जुन! जो पुरुष योगाभ्यास से सम्पूर्ण कर्मों को ईश्वरही में अर्पण करता है और ज्ञानसे जिसने संशय को नाश किया सो विवेकी पुरुष अपने कर्मफलों से बन्धन में नहीं पड़सक्ता ४१ ॥

तस्मादज्ञानसम्भूतं हृत्स्थंज्ञानासिनात्मना ।
छित्त्वैनंसंशयंयोगमातिष्ठोत्तिष्ठभारत ४२ ॥

इति श्रीमन्महाभारते शतसहस्रसंहितायां वैया-
सिक्यांभीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतासूपनि-
षत्सुब्रह्मविद्यायांयोगशास्त्रे श्रीकृष्णार्ज्जुन
संवादे कर्मसंन्यासयोगोनाम
चतुर्थोऽध्यायः ४ ॥

हे अर्जुन ! इसलिये अपने आत्मा के संशय को जो अज्ञान से उत्पन्न भया और हृदय में स्थित है उसें ज्ञानरूपी तरवार से छेदनकर योग को प्राप्तहो युद्ध के लिये उठो ४२ ॥

कर्मसंन्यासयोगचौथाअध्यायसमाप्तहुआ ४ ॥

पञ्चम अध्याय ॥

अर्जुनउवाच ॥

संन्यासंकर्मणांकृष्ण पुनर्योगञ्चशंससि ।
यच्छ्रेयएतयोरेकं तन्मेब्रूहिसुनिश्चितम् १ ॥

श्रीभगवानुवाच ॥

संन्यासःकर्मयोगश्च निःश्रेयसकरावुभौ ।
तयोस्तुकर्मसंन्यासात् कर्मयोगोविशिष्यते २ ॥

अर्जुन प्रश्न करते हैं हे कृष्ण ! कर्म से न्यास और कर्म योग अर्थात् कर्म के त्याग और ग्रहण दोनों की प्रशंसा करते हो सो इन दोनों में से जो मङ्गल और योग्य हो मुझसे कहो १ ॥

श्रीभगवान् उत्तर देते हैं कर्मसंन्यास और कर्म योग दोनों मोक्ष देने के योग्य हैं परन्तु इन दोनों में कर्मसंन्यास से कर्मयोग श्रेष्ठ है २ ॥

ज्ञेयस्सनित्यसंन्यासी योनद्वेष्टिनकाङ्क्षति ।
निर्द्वन्द्वोहिमहाबाहो सुखंबन्धात्प्रमुच्यते ३ ॥
सांख्ययोगौपृथग्बालाः प्रवदन्तिनपण्डिताः ।
एकमप्यास्थितःसम्यगुभयोर्विन्दतेफलम् ४ ॥
यत्सांख्यैःप्राप्यतेस्थानं तद्योगैरपिगम्यते ।
एकंसांख्यञ्चयोगञ्च यःपश्यतिसपश्यति ५ ॥

हे महाबाहो अर्जुन ! जो पुरुष राग और द्वेष दोनों को समान जानकर रहता है उसे नित्य संन्यासी जानो क्योंकि निर्द्वन्द्व हो संसाररूपबन्ध से सुख पूर्वक मुक्त होता है ३ ॥

कर्मसंन्यास और कर्मयोग में मूर्खलोग भेद कहते हैं और पण्डित नहीं पर इन दोनों में से एकका भी जो अनुष्ठान करेगा सो दोनों का फल अच्छीभांति से पावेगा ४ ॥

कैवल्यरूप स्थान जो कर्म संन्यासीलोग पाते हैं

संन्यासस्तुमहाबाहो दुःखमाप्तुमयोगतः ।
योगयुक्तोमुनिर्ब्रह्मनचिरेणाधिगच्छति ६ ॥
योगयुक्तोविशुद्धात्मा विजितात्मा जितेन्द्रियः ।
सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपिनलिप्यते ७ ॥

वही कर्मयोगवाले भी पाते हैं और कर्मसंन्यास और कर्मयोग को जो एक देखता है उसी का देखना ठीकहै ५ ॥

हे अर्जुन ! बिना कर्मयोग के संन्यास दुःख प्राप्तिके हेतुहै जो योगयुक्त मौनी होकर संन्यास आश्रयण करेगा सो अल्पकाल में ब्रह्म को प्राप्तहोगा ६ ॥

जो पुरुष योगाभ्यासयुक्त हो शुद्धबुद्धि और मन से इन्द्रियों को वश करके ईश्वर को सर्व भूतव्यापी जानकर कर्मकरता है सो कर्मफल से बद्ध नहीं होता ७ ॥

नैवकिञ्चित् करोमीति युक्तोमन्येततत्त्ववित् ।
पश्यञ्छृण्वन्स्पृशन् जिघ्रन्नश्ननन्गच्छन्स्व
पञ्च्छ्वसन् ८ ॥
प्रलपन्विसृजन्गृह्णन्नुन्मिषन्निमिषन्नपि ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु वर्त्तन्तइतिधारयन् ९ ॥

योगयुक्त विवेकीपुरुष यद्यपि इन्द्रियोंका व्यापार करता है तथापि अपनेको कर्त्ता नहीं जानता क्योंकि देखने, सुनने, छूने, सूंघने, चखने, चलने और स्वप्न और श्वास लेनेसे अपनेमें कर्तृत्वाभिनिवेश नहीं मानता ८ ॥

उच्चार त्याग ग्रहण और कर्माख्य प्राणवायु का संकोच विकास आदि सम्पूर्ण इन्द्रियां अपना अपना व्यापार करती हैं ९ ॥

ब्रह्मण्याधायकर्म्माणिसङ्गन्त्यक्त्वाकरोतियः।
लिप्यतेनसपापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा १०॥
कायेनमनसाबुद्ध्याकेवलैरिन्द्रियैरपि।
योगिनःकर्मकुर्वन्तिसङ्गन्त्यक्त्वात्मशुद्धये ११॥
युक्तःकर्मफलन्त्यक्त्वाशान्तिमाप्नोतिनैष्ठिकीम्।
अयुक्तःकामकारेण फलेसक्तोनिबद्ध्यते १२॥

सम्पूर्ण कर्मों को परमेश्वरही में अर्पण करके कर्मफल की आशा से रहित हो जो पुरुष कर्म करता है सो पापसे नहीं लिप्त होता जैसे जलमें कमल का पत्ता रहता है तौभी उस से लिप्त नहीं होता १० ॥

शरीर मन बुद्धि और इन्द्रियादि से तत्तत्कर्म फल की अपेक्षा छोड़कर योगीलोग चित्तशुद्धिके हेतु कर्म करते हैं ११ ॥

परमेश्वर आराधन में तत्पर हो कर्मफलको

सर्वकर्माणिमनसा संन्यस्यास्तेसुखंवशी।
नवद्वारेपुरेदेही नैवकुर्वन्नकारयन् १३॥
नकर्तृत्वन्नकर्माणि लोकस्यसृजतिप्रभुः।
नकर्मफलसंयोगं स्वभावस्तुप्रवर्त्तते १४॥

अपेक्षा छोड़कर कर्म कर कर्मकरने से युक्त पुरुष शान्ति को प्राप्त होते हैं और अयुक्त पुरुष काम से फलासक्त होकर बद्ध रहते हैं १२॥

सब कर्म मनसे त्यागकर जितचित्त पुरुष सुख से रहता है और नेत्र आदि नवद्वारपुरमें देही न आपकुछ करता और न कराता है १३॥

सर्वव्यापी ईश्वर जगत् का कर्तृत्व और कर्म आप नहीं सृष्टि करता परन्तु अनादि अविद्या से कामवश हो स्वाभाविक प्रवृत्त होताहै और ईश्वर नहीं नियोग करता १४॥

नादत्तेकस्यचित्पापं नचैवसुकृतंविभुः ।
अज्ञानेनावृतंज्ञानं तेनमुह्यन्तिजन्तवः १५ ॥
ज्ञानेनतुतदज्ञानं येषान्नाशितमात्मनः ।
तेषामादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयतितत्परम् १६ ॥
तद्बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणाः ।
गच्छन्त्यपुनरावृत्तिं ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः १७ ॥

परमेश्वर न किसी को पाप देता है न पुण्य परन्तु अज्ञान से ज्ञान घेरा है इस लिये जीव आपही मोह को प्राप्त होताहै १५ ॥

जिसका अज्ञान ज्ञान के प्रकाश से नष्ट भया उस का ज्ञान परमेश्वर का प्रकाशक है जैसे सूर्य अन्धकार दूर करके सब पदार्थों का प्रकाश करता है १६ ॥

जिसकी बुद्धि मन और तात्पर्य परमेश्वरही में है उसका स्थान परमेश्वरही है और वह ज्ञान

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणेगविहस्तिनि ।
शुनिचैवश्वपाकेच पण्डिताःसमदर्शिनः १८ ॥
इहैवतैर्जितःसर्गो येषांसाम्येस्थितंमनः ।
निर्दोषंहिसमंब्रह्मतस्माद्ब्रह्मणितेस्थिताः १९ ॥

से निर्मलहो पुनरावृत्ति से रहित होकर ब्रह्मको प्राप्तहोता है १७ ॥

परमेश्वरको सर्वव्यापी जाननेवाला विवेकी विद्या और विनय से युक्त ब्राह्मण चमार और कुत्ता गौ और हाथी में भेद नहीं जानता सबको समान देखता है १८ ॥

वे लोग जिनका मन स्वाधीन है इसीलोक में संसार जीत लेतेहैं क्योंकि जिनकी दृष्टि में ब्रह्म निर्दोष और समान है, अवश्य ब्रह्मभाव को प्राप्त हैं १९ ॥

नप्रहृष्येत्प्रियंप्राप्य नोद्विजेत्प्राप्यचाप्रियम् ।
स्थिरबुद्धिरसम्मूढोब्रह्मविद्ब्रह्मणिस्थितः २० ॥
बाह्यस्पर्शेष्वसक्तात्माविन्दत्यात्मनियत्सुखम् ।
सब्रह्मयोगयुक्तात्मा सुखमक्षय्यमश्नुते २१ ॥
येहिसंस्पर्शजाभोगा दुःखयोनयएवते ।
आद्यन्तवन्तःकौन्तेय नतेषु रमतेबुधः २२ ॥

जो पुरुष प्रिय वस्तु के प्राप्तहोने से हर्ष और अप्रिय के प्राप्तहोने से विषाद नहीं करता उसकी बुद्धि निश्चल और मोहरहित है इसलिये वह ब्रह्मभाव को प्राप्त है २० ॥

बाह्य विषयादिक में असक्तचित्तवाला पुरुष जो सुख अपने में अनुभव करता है उस अक्षय सुखको समाधिस्थ पुरुष प्राप्त होते हैं २१ ॥

हे अर्जुन ! जो भोग इन्द्रियों की वृत्तिसे उत्पन्नहोते हैं सो दुःख के कारण और उत्पत्ति

शक्नोतीहैवयःसोढुं प्राक्शरीरविमोक्षणात् ।
कामक्रोधोद्भवंवेगं संयुक्तःससुखीनरः २३ ॥
योन्तःसुखोन्तरारामस्तथान्तर्ज्योतिरेवयः ।
सयोगीब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मभूतोधिगच्छति २४ ॥

और विनाशवान् हैं इसलिये विवेकी पुरुष उनमें नहीं रमता २२ ॥

जो पुरुष शरीरपतनसे पहिले इसलोकमें काम क्रोध से उत्पन्न भये मनके वेगको सहन करसक्ता है सो योगयुक्त और सुखी है २३ जो पुरुष अन्तःकरण में सर्वदा सुखीरहता और अन्तर में क्रीड़ा करता है और ऐसेही अपने मनमें सदा प्रकाशित रहता है सो समाधियुक्त पुरुष ब्रह्मभाव को प्राप्तहो मोक्ष पाता है २४ ॥

लभन्तेब्रह्मनिर्वाणमृषयःक्षीणकल्मषाः ।
छिन्नद्वैधायतात्मानः सर्वभूतहितेरताः २५ ॥
कामक्रोधवियुक्तानां यतीनांयतचेतसाम् ।
अभितोब्रह्मनिर्वाणं वर्त्ततेविदितात्मनाम् २६ ॥
स्पर्शान्कृत्वावहिर्बाह्यांश्चक्षुश्चैवान्तरेभ्रुवोः ।
प्राणापानौसमौकृत्वानासाभ्यन्तरचारिणौ२७॥

जो ऋषी निर्वाण ब्रह्म को प्राप्त हुये हैं उनका कल्मष और भेद वुद्धि दूरहुई है और मन वशमें है और सम्पूर्ण प्राणी के हितका आचरण करतेहैं२५॥

कामक्रोध से रहित नियमित चित्तवाले जो परमेश्वर को यथार्थ रूप से जानते हैं सो संन्यासी सर्वत्र निर्वाण हो ब्रह्मको प्राप्तहोते हैं २६ ॥

वाह्य स्पर्शों को वाहर कर दृष्टिको भ्रूलताके वीच रख प्राण अपान दोनों को कुम्भकसे नासा के अन्तर करके २७ ॥

यतेन्द्रियमनोबुद्धिर्मुनिर्मोक्षपरायणः ।
विगतेच्छाभयक्रोधो यस्सदामुक्तएवसः २८ ॥
भोक्तारंयज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम् ।
सुहृदंसर्वभूतानां ज्ञात्वामांशान्तिमृच्छति २९ ॥
इति श्रीमन्महाभारते वैयासिक्याम्भीष्मपर्व्वणि
श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सुब्रह्मविद्यायां योग-
शास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे संन्यासयोगो
नाम पञ्चमोऽध्यायः समाप्तः ५ ॥

नियमित मन बुद्धि और इन्द्रियवाले पुरुष मौनी होकर इच्छा भय और क्रोधसे रहित हैं उन्हें सदा मुक्त जानो २८ ॥

यज्ञ और तपके अनुभव करनेवाला और सम्पूर्ण लोकका ईश्वर और सबका हितकारी जो मुझको जानताहै सो शान्तिको प्राप्त होताहै २९ ॥
संन्यासयोगनिरूपणपांचवांअध्याय समाप्तहुआ ५॥

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

अनाश्रितःकर्मफलं कार्यंकर्मकरोतियः ।
ससंन्यासीचयोगीच ननिरग्निर्नचाक्रियः १ ॥
यंसंन्यासमितिप्राहुर्योगंतंविद्धिपाण्डव ।
नह्यसंन्यस्तसंकल्पो योगीभवतिकश्चन २ ॥

श्रीभगवान् कहते हैं जो पुरुष कर्मफलकी अपेक्षा त्यागकर विहितकर्म का आचरण करताहै सो संन्यासी और योगी है यदि इष्टापूर्त्तादि कर्म अर्थात् अग्निसाध्य और अनग्निसाध्य कर्मों का त्यागी हो १ ॥

हे पांडव अर्जुन ! जिसको विवेकी लोग संन्यास कहते हैं इसी को योग जानो क्योंकि बिना मनके सङ्कल्प त्यागे कोई योगी नहीं होता २ ॥

आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्मकारणमुच्यते ।
योगारूढस्यतस्यैव शमःकारणमुच्यते ३ ॥
यदाहिनेन्द्रियार्थेषु नकर्मस्वनुषज्जते ।
सर्वसङ्कल्पसंन्यासी योगारूढस्तदोच्यते ४ ॥
उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत् ।
आत्मैवह्यात्मनोबन्धुरात्मैवरिपुरात्मनः ५ ॥

ज्ञानयोग में आरूढ़ होने वाले पुरुषका अन्तः-करण शुद्धिद्वारा कर्म कारण कहलाता है और समाधिस्थपुरुषको इन्द्रिय का निग्रह कारणहोताहै ३॥

जब भोग और भोगसाधन कर्म में पुरुष को प्रीति नहीं होती तब योगारूढ़ सब सङ्कल्प संन्यासी कहलाता है ४ ॥

विवेक ज्ञान से अपनेआत्माको आपही संसार से उद्धारकरै और आत्माको अधोगति में न डाले क्योंकिआत्माही अपना उपकारबन्धुऔरशत्रुहै५॥

बन्धुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः ।
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्त्तेतात्मैव शत्रुवत् ६ ॥
जितात्मनः प्रशान्तस्य परमात्मा समाहितः ।
शीतोष्णसुखदुःखेषु तथा मानापमानयोः ७ ॥

जिसने विवेक ज्ञान से मन को वश किया उस का उपकारक बन्धु आत्माही है अविवेकी का अपकारक शत्रु भी आत्माही है ६ ॥

स्वाधीन मन और प्रशान्त बुद्धिवाला अर्थात् राग द्वेष रहित पुरुष जो शीतोष्ण और मान अपमान को समान जानता है परमात्मा उसके साथही है ७ ॥

ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थोविजितेन्द्रियः ।
युक्तइत्युच्यतेयोगी समलोष्टाश्मकाञ्चनः ८ ॥
सुहृन्मित्रार्युदासीन मध्यस्थद्वेष्यबन्धुषु ।
साधुष्वपिचपापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते ९ ॥
योगीयुञ्जीतसततमात्मानंरहसिस्थितः ।
एकाकीयतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रहः १० ॥

ज्ञान और विज्ञान से जिसका मन निराकांक्षित विकार से रहित और जितेन्द्रियहै सो योगी यदि लोहा पत्थर और सोने को समान जाने तो युक्त कहलाता है ८ ॥

जो पुरुष इष्ट मित्र और शत्रु से उदासीन द्वेषी और बन्धु का मध्यस्थ है साधु और पापी को समान देखता है सो समबुद्धि कहलाताहै ९ ॥

योगारूढ़ पुरुष आकांक्षा और प्रतिग्रह छोड़

शुचौदेशेप्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः ।
नात्युच्छ्रितंनातिनीचंचैलाजिनकुशोत्तरम् ११ ॥
तत्रैकाग्रंमनःकृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः ।
उपविश्यासनेयुञ्ज्याद्योगमात्मविशुद्धये १२ ॥

शरीर और चित्त दोनों को स्वाधीन कर एकान्त में अकेला हो सदा मन को नियुक्त करे १० ॥

योगारूढ़ पुरुष पवित्र भूमि पर अचल वा वहुत ऊंचे और न वहुत नीचे तिस पर कुशा उस पर व्याघ्रचर्म्म उस पर वस्त्र का आसन विछावै ११ ॥

ऐसे आसन पर वैठ मन एकाग्र करके चित्त और इन्द्रियों का व्यापार शान्तकर मनकी स्थिरता के हेतु योगाभ्यास करे १२ ॥

समंकायशिरोग्रीवं धारयन्नचलंस्थिरः ।
संप्रेक्ष्यनासिकाग्रस्वं दिशश्चानवलोकयन् १३॥
प्रशान्तात्माविगतभीर्ब्रह्मचारिव्रतेस्थितः ।
मनःसंयम्यमच्चित्तो युक्तआसीतमत्परः १४ ॥
युञ्जन्नेवंसदात्मानं योगीनियतमानसः ।
शान्तिन्निर्वाणपरमां मत्संस्थामधिगच्छति १५ ॥

शरीरमस्तक और कण्ठको समान और अचल धारण करके अपने नासिकाग्र को देखता भया दिशाअवलोकनसे रहितहो आसनपर बैठे १३ ॥

प्रशान्त आत्मा और भय रहित होकर ब्रह्मचर्य्य व्रत में स्थिर हो मेरी ओर चित्तलगा मुझीको पुरुपार्थसमझ मनको योगमें नियुक्त करताहै १४ ॥

योगारूढ़ पुरुष सर्वदा इसी प्रकारसे मन को नियुक्त करता भया शान्तमन होकर मेरेस्वरूप मोक्ष रूप शान्ति को प्राप्त होवा है १५ ॥

नात्यश्नतस्तुयोगोस्ति नचैकान्तमनश्नतः ।
नचातिस्वप्नशीलस्य जाग्रतोनैवचार्जुन १६ ॥
युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्यकर्म्मसु ।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगोभवतिदुःखहा १७ ॥
यदाविनियतंचित्तमात्मन्येवावतिष्ठते ।
निःस्पृहःसर्वकामेभ्यो युक्तइत्युच्यतेतदा १८ ॥

हे अर्जुन ! अतिभक्षण और नहीं भोजनकरनेवाला बहुत सोने और जागनेवाला पुरुष योग के हेतु योग्य नहीं १६ ॥

जो पुरुष आहार विहार और कर्म में प्रयत्न और निद्रा जागरण समान करता है संसाररूप दुःख दूर करने वाले योग को प्राप्त होताहै १७॥

जब योगी अपने में चित्त नियत होकर सम्पूर्ण कामों से निःस्पृह रहेगा तब युक्त कहलावैगा १८॥

यथादीपोनिवातस्थो नेङ्गतेसोपमास्मृता ।
योगिनोयतचित्तस्य युञ्जतोयोगमात्मनः १६ ॥
यत्रोपरमतेचित्तं निरुद्धंयोग सेवया ।
यत्रचैवात्मनात्मानं पश्यन्नात्मनितुष्यति २० ॥
सुखमात्यन्तिकंयत्तद् बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम् ।
वेत्तियत्रनचैवायं स्थितश्चलतितत्त्वतः २१ ॥

जैसे निवातदेश में दीप चञ्चल नहीं होता वैसेही जब पुरुष युक्त चित्त होकर उत्तम योगाभ्यास करता रहेगा तब यह दृष्टान्त उस युक्त योगी के विषय में ठीक होगा १६ ॥

जिस योग अवस्था में योगाभ्यास से चित्त निरोध होकर रमता है और मनसे अपने आत्मा को अपने में देखकर सन्तुष्ट होता है २० ॥

जब आरूढ़ अवस्थामें आत्मतत्त्व से निश्चल और स्थिर होता है तब योगी को बहुत सुख

यंलब्ध्वाचापरंलाभं मन्यतेनाधिकन्ततः ।
यस्मिन्स्थितोनदुःखेनगुरुणापिविचाल्यते २२॥
तंविद्याद्दुःखसंयोग वियोगंयोगसञ्ज्ञितम् ।
सनिश्चयेनयोक्तव्यो योगोनिर्विण्णचेतसा २३॥

मिलता है जो निरतिशयहै और इन्द्रियों से ग्रहण करने के योग्य नहीं केवल ज्ञानग्राह्य है २१ ॥

जिस निरतिशय सुख के प्राप्त होनेसे दूसरा कोई अधिक लाभ नहीं मानता और उसके अनुभव से बहुतदुःख करके भी नहीं चलित होता २२ ॥

जिसके जानने से दुःख का वियोग होता है सो योग निश्चल चित्तसे निश्चयकरके अभ्यास करने के योग्य है २३ ॥

सङ्कल्पप्रभवान्कामांस्त्यक्त्वासर्वानशेषतः ।
मनसैवेन्द्रियग्रामं विनियम्यसमन्ततः २४ ॥
शनैश्शनैरुपरमेद्बुद्ध्याधृतिगृहीतया ।
आत्मसंस्थंमनःकृत्वानाकिञ्चिदपिचिन्तयेत् २५॥
यतोयतोनिश्चरति मनश्चञ्चलमस्थिरम् ।
ततस्ततोनियम्यैतदात्मन्येववशन्नयेत् २६ ॥

सङ्कल्प उत्पन्न सब कामों को निश्शेष करके त्याग करै और चारों ओर से इन्द्रियग्रामको मन से रोंककर योगाभ्यास में चित्त लगावै २४ ॥

धीरे धीरे शान्तहो धारण वशीकृत बुद्धि से आत्मा में मनको स्थिरकर बाह्य विषयोंसे विमुक्त हो योगाभ्यास करै २५ ॥

जिस जिस विषय से अनुरक्त हो मन चलता है उसे उसे रोककर अपने आत्माही के वशकरै क्योंकि मन चञ्चल है स्थिरनहीं २६ ॥

प्रशान्तमनसंह्येनं योगिनंसुखमुत्तमम् ।
उपैतिशान्तरजसं ब्रह्मभूतमकल्मषम् २७ ॥
युञ्जन्नेवंसदात्मानं योगीविगतकल्मषः ।
सुखेनब्रह्मसंस्पर्शमत्यन्तसुखमश्नुते २८ ॥
सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानिचात्मनि ।
ईक्षतेयोगयुक्तात्मा सर्वत्रसमदर्शनः २९ ॥

शान्तमनवाले और ब्रह्मस्वरूप में प्राप्त हुये योगी को उत्तम सुख प्राप्त होताहै यदि वह रजोगुण और कल्मष से रहितहो २७ ॥

ऐसा कल्मषरहित योगी सर्वदा मनको नियोग करता हुआ ब्रह्म सम्बन्ध से अनायास जीवन्मुक्त ताको प्राप्त होता है २८ ॥

योग में नियुक्तमनकर और सर्वत्र समदर्शी योगी आत्मा को सब भूतों में और सब भूतों को आत्मा में स्थित देखता है २९ ॥

योमांपश्यतिसर्वत्र सर्वञ्चमयिपश्यति ।
तस्याहन्नप्रणश्यामि सचमेनप्रणश्यति ३० ॥
सर्वभूतस्थितंयोमाम्भजत्येकत्वमास्थितः ।
सर्वथावर्तमानोऽपि सयोगीमयिवर्त्तते ३१ ॥
आत्मौपम्येनसर्वत्र समंपश्यतियोऽर्जुन ।
सुखंवायदिवादुःखं सयोगीपरमोमतः ३२ ॥

जो पुरुष मुझको सर्वत्र और मुझमें सम्पूर्ण जगत् देखता है उस से मैं और वह मुझ से दूर नहीं ३० ॥

जो पुरुष सर्वव्यापी और एकहीं जानताहुआ सर्वभूतों में मुझको स्थित जानता है सो किसी प्रकार से रहै परन्तु ज्ञानी होकर मुझ में प्राप्त होता है ३१ ॥

हे अर्जुन ! जो पुरुष अपनी आत्मा के समान सब प्राणियों के दुःख सुख को समझता है सो योगियों में परम उत्तम है ३२ ॥

अर्जुनउवाच ॥

योऽयंयोगस्त्वयाप्रोक्तः साम्येनमधुसूदन ।
एतस्याहंनपश्यामिचञ्चलत्वात्स्थितिंस्थिराम् ३३॥
चञ्चलंहिमनःकृष्णप्रमाथिबलवद्दृढम् ।
तस्याहंनिग्रहंमन्ये वायोरिवसुदुष्करम् ३४ ॥

अर्जुन प्रश्न करते हैं कि हे मधुसूदन! यह योग जो तुमने मनकी स्थिरताके हेतु कहा उस की बहुत कालतक स्थिति नहीं देखता हूं क्योंकि मन चञ्चल और स्थिर स्वभावहै ३३ ॥

हे कृष्ण ! मन चञ्चल है और देह इन्द्रियों की पीड़ा करके विचारसे जीतने के योग्य नहीं और विषयवासना के अनुराग से दुर्भेद इसलिये इसका निग्रह अतिकठिन जानपड़ताहै जैसे आकाशमें वायु सर्वत्र व्याप्तहै परन्तु कोई उसे रोक नहीं सक्ता ३४ ॥

श्रीभगवानुवाच ॥

असंशयम्महाबाहो मनोदुर्निग्रहञ्चलम् ।
अभ्यासेनतुकौन्तेय वैराग्येणचगृह्यते ३५ ॥
असंयतात्मनोयोगो दुष्प्राप्यइतिमेमतिः ।
वश्यात्मनातुयतता शक्योवाप्तुमुपायतः ३६ ॥

हे महाबाहो अर्जुन ! यह तुम्हारा कहना सच है कि मन चञ्चल और निग्रह के योग्यनहीं, परन्तु परमेश्वराकार अन्तःकरण की वृत्ति और विषयों के वैराग्य से निग्रह होता है ३५ ॥

स्थिरमनवाला पुरुष योग प्राप्त होने के योग्य नहीं यह मुझको निश्चय होता है जिसका मन वशहै और प्रयत्न भी करता है सो उपायद्वारायोग प्राप्त करने के योग्य है ३६ ॥

अर्जुनउवाच ॥

अयतिःश्रद्धयोपेतो योगाच्चलितमानसः ।
अप्राप्ययोगसंसिद्धिं कांगतिंकृष्णगच्छति ३७॥
कच्चिन्नोभयविभ्रष्टश्छिन्नाभ्रमिवनश्यति ।
अप्रतिष्ठोमहाबाहो विमूढोब्रह्मणःपथि ३८ ॥

अर्जुन प्रश्नकरते हैं हे कृष्ण ! जो पुरुष श्रद्धावान् होकर योग में प्रवृत्त है परन्तु प्रयत्न न करने से योगसे मन चलित होकर योगसिद्धिको न प्राप्तहुआ तो उसकी क्या गति होगी ३७ ॥

हे महाबाहो कृष्ण ! कर्म और मोक्षरहित पुरुष निराश्रय होकर ब्रह्मप्राप्ति मार्ग के उपाय में मोहाक्रान्त होने से वायुच्छिन्न मेघ की नाईं क्या नष्ट होगा ३८ ॥

एतन्मेसंशयंकृष्ण छेत्तुमर्हस्यशेषतः ।
त्वदन्यःसंशयस्यास्य छेत्तानह्युपपद्यते ३९ ॥

श्रीभगवानुवाच ॥

पार्थनैवेहनामुत्र विनाशस्तस्यविद्यते ।
नहिकल्याणकृत्कश्चिद्दुर्गतिन्तातगच्छति ४० ॥

हे कृष्ण ! मेरे इस संशय को तुम्हीं दूरकरने के योग्यहो तुम से अतिरिक्त इस सम्पूर्ण संशय का निवर्त्तक कोई नहीं ३९ ॥

हे तात अर्ज्जुन ! नष्टपुरुष को इस कर्मभूमिमें पातक नहीं और परलोक में भी नरकप्राप्तिनहीं क्योंकि कोई शुभकर्मवाले पुरुष दुर्गतिको नहीं जाते ४० ॥

प्राप्यपुण्यकृताँल्लोकानुषित्वाशाश्वतीःसमाः ।
शुचीनांश्रीमतांगेहे योगभ्रष्टोभिजायते ४१ ॥
अथवायोगिनामेव कुलेभवतिधीमताम् ।
एतद्धिदुर्लभतरंलोकेजन्मयदीदृशम् ४२ ॥
तत्रतम्बुद्धिसंयोगं लभतेपौर्वदेहिकम् ।
यततेचततोभूयः संसिद्धौकुरुनन्दन ४३ ॥

अल्पकालवाले योगभ्रष्ट पुरुष जिस लोक में अश्वमेधादि यज्ञ करनेवाले प्राप्त होते हैं वहां बहुतकालतक निवास करनेके सदाचारशील धनियों के घर में उत्पन्न होते हैं ४१ ॥

चिरकाल अभ्यासी योगभ्रष्ट पुरुष केवल ज्ञानियोंके कुल में उत्पन्न होते हैं और इस लोक में इस प्रकारसे सत्कुलमें जन्मपाना दुर्लभहै ४२ ॥

हे कुरुनन्दन ! उसी कुल में बुद्धिकरके फिर उसी योगको प्राप्त होते हैं और पूर्वदेह सम्बन्ध

पूर्वाभ्यासेनतेनैव ह्रियतेह्यवशोऽपिसः ।
जिज्ञासुरपियोगस्य शब्दब्रह्मातिवर्तते ४४ ॥
प्रयत्नाद्यतमानस्तु योगीसंशुद्धकिल्बिषः ।
अनेकजन्मसंसिद्धस्ततोयातिपराङ्गतिम् ४५ ॥

योगके प्राप्तहोने से फिर अधिक फल प्राप्तकरने का प्रयत्न करते हैं ४३ ॥

उस पूर्व अभ्यास से किसी प्रतिबन्धक योगसे इच्छारहित होवै तौ भी विषयों से मन हटाकर योगमें स्थिर करते हैं और योग इच्छित पुरुष वेदयुक्त कर्मफल से अधिक मोक्षपदको प्राप्तहोके युक्त होता है ४४ ॥

योगी पुरुष कल्मष से शुद्ध होकर अधिकयत्न करताहुआ अनेक जन्म के योगाभ्यास से सिद्ध और ज्ञानी होकर उत्तम मोक्ष गति को प्राप्त होता है ४५ ॥

तपस्विभ्योधिकोयोगीज्ञानिभ्योपिमतोऽधिकः ।
कर्मिभ्यश्चाधिकोयोगीतस्माद्योगीभवार्जुन ४६॥
योगिनामपिसर्वेषाम्मद्गतेनान्तरात्मना ।
श्रद्धावान्भजतेयोमांसमेयुक्ततमोमतः ४७॥
इति श्रीमन्महाभारते शतसहस्रसंहितायां वैया-
सिक्यांभीष्मपर्वणिश्रीमद्भगवद्गीतासूपनिष
त्सुब्रह्मविद्यायांयोगशास्त्रेश्रीकृष्णार्जुन सं-
वादेआत्मसंयमयोगोनामषष्ठोऽध्यायः६॥

चान्द्रायणादि करनेवाले तपस्वियों से शास्त्र जाननेवालों से और इष्टापूर्त्तादि कर्मकरनेवालोंसे योगी अधिक है इसलिये तुमभी योगीहो ४६ ॥

जो पुरुष मेरी ओर चित्त लगाकर श्रद्धावान् हो मुझको भजता है सो मेरी बुद्धि में योगियों से श्रेष्ठहै ४७ ॥

आत्मसंयमयोगनामकछठवांअध्यायसमाप्तहुआ६॥

श्रीभगवानुवाच ॥

मय्यासक्तमनाःपार्थयोगंयुंजन्मदाश्रयः ।
असंशयंसमग्रम्मांयथाज्ञास्यसितच्छृणु १ ॥
ज्ञानन्तेहंसविज्ञानमिदंवक्ष्याम्यशेषतः ।
यज्ज्ञात्वानेहभूयोन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते २ ॥

श्रीभगवान् कहते हैं हे पार्थ ! जिसकामन मुझ में लगा है और मुझी को आश्रय समझताहै सो पुरुष योगाभ्यास करताहुआ निस्सन्देह सम्पूर्ण ऐश्वर्य्यसहित जैसा मुझे जानेगा सो सुनो १ ॥

विज्ञान कहे अनुभव सहित यह सम्पूर्ण शास्त्र ज्ञान हम तुमसे कहेंगे जिसके जानने के अनन्तर इस शुभमार्ग में फिर कुछ जानने के योग्य बाकी नहीं रहता २ ॥

मनुष्याणांसहस्रेषु कश्चिद्यततिसिद्धये ।
यततामपिसिद्धानांकश्चिन्मांवेत्तितत्त्वतः ३ ॥
भूमिरापोनलोवायुःखम्मनोवुद्धिरेवच ।
अहङ्कारइतीयम्मेभिन्नाप्रकृतिरष्टधा ४ ॥
अपरेयमितस्त्वन्यांप्रकृतिंविद्धिमेपराम् ।
जीवभूताम्महावाहोययेदन्धार्य्यतेजगत् ५ ॥

सहस्र मनुष्यों में से एक अपने पुण्यकी अधिकतासे उत्तमज्ञान के हेतु यत्न करता है और उन सैकड़ों यत्न करनेवालों में से कोई मुझ को यथार्थ करके जानता है ३ ॥

पृथ्वी जल अग्नि वायु आकाश मन वुद्धि और अहङ्कार इन आठ भेदोंसे मेरी प्रकृति भिन्नहै ४ ॥

हे महावाहो! इसके परे अपराप्रकृति से जानो जो चेतन जीवस्वरूप है कि जिस सें सम्पूर्ण जगत् धारण होता है ५ ॥

एतद्योनीनिभूतानि सर्वाणीत्युपधारय ।
अहंकृत्स्नस्यजगतःप्रभवःप्रलयस्तथा ६ ॥
मत्तःपरतरंनान्यत्किञ्चिदस्तिधनञ्जय ।
मयिसर्वमिदम्प्रोतं सूत्रेमणिगणाइव ७ ॥
रसोहमप्सुकौन्तेय प्रभास्मिशशिसूर्ययोः ।
प्रणवस्सर्ववेदेषु शब्दःखेपौरुषन्नृषु ८ ॥

स्थावर जङ्गमरूप सम्पूर्णभूत इन दो जड़ और चेतन प्रकृतियों से उत्पन्न जानो और ये प्रकृतियां हमीं से उत्पन्न भई हैं इसलिये सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि और प्रलय के कारण हमीं हैं ६ ॥

हे धनञ्जय अर्जुन ! मुझ से और कोई श्रेष्ठ नहीं जैसे सूत्र में सब मणियां पिरोई जाती हैं वैसेही सम्पूर्ण जगत् मुझ में पिरोया है ७ ॥

हे अर्जुन ! जलका रस सूर्य्य चन्द्रोंकी प्रभा वेदों का प्रणव और मनुष्यों का पुरुषार्थ मर्हीहूं ८॥

पुण्योगन्धःपृथिव्यांचतेजश्चास्मिविभावसौ ।
जीवनंसर्वभूतेषु तपश्चास्मितपस्विषु ९ ॥
वीजम्मांसर्वभूतानां विद्धिपार्थसनातनम् ।
बुद्धिर्वुद्धिमतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम् १० ॥
वलम्वलवताञ्चाहं कामरागविवर्जितम् ।
धर्माविरुद्धोभूतेषु कामोस्मिभरतर्षभ ११ ॥

और भी पृथ्वी का सुगन्ध अग्निका तेज सब भूतों का जीवन और तपस्वियोंका तप महीं हूं ९॥

हे पार्थ ! चराचरात्मक भूतों का आदिकारण मुझीकोजानो और विवेकियोंकी बुद्धि और तेजस्वियों का तेज महीं हूं १० ॥

हे अर्जुन ! वलवानों का वल काम रागादिसे रहित महींहूं और भूतों में धर्मसे अविरुद्ध कामभी महीं हूं ११ ॥

येचैवसात्त्विकाभावाराजसास्तामसाश्चये ।
मत्तएवेतितान्विद्धिनत्वहन्तेषुतेमयि १२ ॥
त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिःसर्वमिदञ्जगत् ।
मोहितन्नाभिजानातिमामेभ्यःपरमव्ययम् १३ ॥
दैवीह्येषागुणमयी ममायादुरत्यया ।
मामेवयेप्रपद्यन्तेमायामेतान्तरन्तिते १४ ॥

सात्त्विक शम दम आदि और राजस हर्ष विषादादि और तामस शोक मोहादि सब भाव मुझी से उत्पन्न जानो और मैं उन में नहीं परन्तु वे मुझ में हैं १२ ॥

इन तीनों गुणस्वरूप भावों से यह सब जगत् मोहको प्राप्तहुआ है इसलिये लोग मुझ को इससे पर नहीं जानते परन्तु मैं सर्व विकार से रहित हूं १३ ॥

यह मेरी त्रिगुणात्मक माया अतिअद्भुत और

नमांदुष्कृतिनोमूढाःप्रपद्यन्तेनराधमाः ।
माययापहृतज्ञाना आसुरम्भावमाश्रिताः १५ ॥
चतुर्विधाभजन्तेमां जनाःसुकृतिनोऽर्जुन ।
आर्तोजिज्ञासुरर्थार्थीज्ञानीचभरतर्षभ १६ ॥

दुस्तर है जो लोग मेरे शरणागत होते हैं वही इस से तरजाते हैं १४ ॥

पापशील मोहाक्रांत अधम नर मुझे नहीं भजते क्योंकि माया से उनकाज्ञान भ्रष्टभया इस से वे असुरभाव को प्राप्तभये हैं १५ ॥

हे अर्जुन ! चारप्रकार के मनुष्य पूर्व पुण्य से मुझको भजते हैं अर्थात् जो रागादि से रहित हैं या जो परमेश्वर को जानने की इच्छा रखतेहैं या जो धनार्थी हैं और जो तत्त्वजाननेवाले हैं १६ ॥

तेषांज्ञानीनित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते ।
प्रियोहिज्ञानिनोत्यर्थमहंसचममप्रियः १७ ॥
उदारास्सर्वएवैते ज्ञानीत्वात्मैवमेमतम् ।
आस्थितःसहियुक्तात्मामामेवानुत्तमाङ्गतिम् १८॥
वहूनांजन्मनामन्ते ज्ञानवान्माम्प्रपद्यते ।
वासुदेवस्सर्वमितिसमहात्मासुदुर्लभः १९ ॥

इन चार मनुष्यों में से ज्ञानी एक भक्तिकरके सर्वदा मुझ में चित्त लगाने से श्रेष्ठ है ज्ञानीको मैं अत्यन्त प्रियहूं और ज्ञानी मुझ को १७ ॥

और सब भी श्रेष्ठ हैं परन्तु ज्ञानी मेरा आत्माही है यह निश्चितहै क्योंकि वह मुझी में चित्त लगाकर मुझी को उत्तम गति जानकर आश्रयण करता है १८ ॥

बहुत जन्मके अनन्तर ज्ञानी यह जानता है कि सम्पूर्ण जगत् वासुदेवहीका स्वरूप है इसलिये ऐसा महात्मा होना दुर्लभहै १९ ॥

कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः ।
तन्तन्नियममास्थाय प्रकृत्यानियताःस्वया २० ॥
योयोयांयांतनुम्भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति ।
तस्यतस्याचलांश्रद्धांतामेवविदधाम्यहम् २१ ॥
सतयाश्रद्धयायुक्तस्तस्याराधनमीहते ।
लभतेचततःकामान्मयैवविहितान्हितान् २२ ॥

जिनका ज्ञान कामादि से हरणभया वे किसी न किसी नियमके आश्रयणहो अपने पूर्व जन्म की वासनाके आधीन हो उन देवताओं को भजते हैं २० ॥

जो २ भक्त जिस २ मूर्तिकी पूजा को श्रद्धा से इच्छा करते हैं उन २ भक्तों को वैसेही दृढ़ श्रद्धा में उत्पन्न करता हूं २१ ॥

वह भक्त उसी श्रद्धा से युक्तहो उन देवताकी मूर्तियोंकी पूजाकी इच्छा करतेहैं फिर इस के

अन्तवत्तुफलन्तेषांतद्भवत्यल्पमेधसाम् ।
देवान्देवयतोयान्तिमद्भक्तायान्तिमामपि २३ ॥
अव्यक्तंव्यक्तिमापन्नंमन्यन्तेमामबुद्धयः ।
परम्भावमजानन्तोममाव्ययमनुत्तमम् २४ ॥

अनन्तर मेरे कहे हुये कामोंको प्राप्तहोतेहैं क्योंकि सब देवतों का स्वरूप मैंहीं हूं इसलिये वे सब मेरे स्वाधीन हैं २२ ॥

जिनकी बुद्धि अल्पहै उनको फल भी विनाशी है और देवआराधन करने वाले विनाशी होकर उन देवतों को प्राप्त होते हैं परन्तु जो मुझे यथार्थ करके पूजता है सो नाश रहित परमानन्दरूप मुझको प्राप्त होता है २३ ॥

अविवेकी पुरुष मुझ अव्यक्त को देहधारी मानते हैं क्योंकि मेरा स्वरूप जो प्रपञ्च से अतिरिक्त श्रेष्ठ और अविनाशीहै उसे नहीं जानते २४ ॥

नाहम्प्रकाशस्सर्वस्ययोगमायासमावृतः ।
मूढोहंनाभिजानातिलोकेमामजमव्ययम् २५ ॥
वेदाहंसमतीतानिवर्त्तमानानिचार्जुन ।
भविष्याणि च भूतानिमान्तुवेदनकश्चन २६ ॥
इच्छाद्वेषसमुत्थेनद्वन्द्वमोहेनभारत ।
सर्वभूतानिसंम्मोहं सर्गेयान्तिपरन्तप २७ ॥

मैं योगमाया से घेरा हूं इसलिये सम्पूर्ण जीवों पर प्रकट नहीं हौं तिसी से लोग मोह को प्राप्त होकर आद्यन्तरहित मुझको नहीं जानते २५ ॥

हे अर्जुन ! मैं भूत भविष्य और वर्त्तमान तीनों काल के भूतोंको जानताहूं परन्तु मुझको कोई नहीं जानता २६ ॥

हे भारत अर्जुन ! रागद्वेष से उत्पन्न सुखदुःख भेदमूलक मोह से सम्पूर्ण भूत उत्पत्ति में मोहको प्राप्त होते हैं २७ ॥

येषान्त्वन्तगतम्पापं जनानांपुण्यकर्मणाम् ।
तेद्वन्द्वमोहनिर्मुक्ताभजन्तेमांदृढव्रताः २८ ॥
जरामरणमोक्षाय मामाश्रित्ययतन्तिये ।
तेब्रह्मतद्विदुःकृत्स्नमध्यात्मंकर्मचाखिलम् २९॥

जिन जीवों का पुण्य कर्म के आचरण से पाप नष्टभया वे सुख दुःख भेदमूलक मोहसे छूटकर दृढ़व्रतहो मेरा भजन करते हैं २८ ॥

जो लोग जरामरण दूर होने के हेतु आश्रय होकर प्रयत्न करते हैं वे सम्पूर्ण शुद्धात्मा स्वरूप ब्रह्म और उसके साधन निमित्त कर्म को भी जानते हैं २९ ॥

साधिभूताधिदैवंमांसाधियज्ञंचयेविदुः ।
प्रयाणकालेपिचमांतेविदुर्युक्तचेतसः ३०. ॥
इति श्रीमन्महाभारते शतसहस्रसंहितायां वैया
सिक्यांभीष्मपर्वणिश्रीमद्भगवद्गीतासूपनि
षत्सुब्रह्मविद्यायांयोगशास्त्रेश्रीकृष्णा
र्जुनसंवादेज्ञानविज्ञानयोगोनाम
सप्तमोऽध्यायः ७ ॥

जो लोग अधिभूत अधिदैवत अधियज्ञ सहित मुझको जानते हैं वे मरणकाल में भी विवेकयुक्त होकर मेरे स्वरूप को जानते हैं ३० ॥

ज्ञानविज्ञानयोगनिरूपणसातवांअध्याय
समाप्तहुआ ७ ॥

अर्जुनउवाच ॥

किन्तद्ब्रह्मकिमध्यात्मं किङ्कर्मपुरुषोत्तम ।
अधिभूतञ्चकिम्प्रोक्तमधिदैवंकिमुच्यते १ ॥
अधियज्ञःकथंकोऽत्रदेहेस्मिन्मधुसूदन ।
प्रयाणकालेचकथंज्ञेयोसिनियतात्मभिः २ ॥

अर्जुन पूंछते हैं हे पुरुषोत्तम ! ब्रह्म क्या है और अध्यात्म अधिभूत अधिदैवतकर्म क्या कहलाता है १ ॥

हे मधुसूदन ! इसदेह में यज्ञ फलदायक और यज्ञप्रयोजक कौन है और कैसेरहता है और अन्तकाल में नियत चित्तवाले पुरुष तुमको कैसा जानते हैं २ ॥

श्रीभगवानुवाच ॥

अक्षरम्ब्रह्मपरमंस्वभावोऽध्यात्ममुच्यते ।
भूतभावोद्भवकरोविसर्गःकर्मसञ्ज्ञितः ३ ॥
अधिभूतंक्षरोभावःपुरुषश्चाधिदैवतम् ।
अधियज्ञोहमेवात्रदेहेदेहभृतांवर ४ ॥

भगवान् कहते हैं ब्रह्म अचल और उत्कृष्टहै और आपही अपने अंश से जीवरूप होना उसका स्वभाव है और उस स्वभाव का भोक्तृत्व होकर देह में रहना अध्यात्म कहलाता है और जरायुज आदि भूतों की उत्पत्ति और उद्भवका करने वाला है विसर्ग अर्थात् देवतों के निमित्त द्रव्य त्याग यज्ञ वही. कर्म कहलाता है ३ ॥

हे प्राणियों में श्रेष्ठ अर्जुन ! विनाशी देहादि का अधिकारी अधिभूतहै अपना अंश भूत सम्पूर्ण देवतों का अधिपति पुरुष आधि दैव कहलाता है इस देहमें महीं अन्तःस्थित अधियज्ञ हूं ४ ॥

अन्तकालेचमामेवस्मरन् मुक्त्वाकलेवरम् ॥
यःप्रयातिसमद्भावंयातिनास्त्यत्रसंशयः ५ ॥
यंयंवापिस्मरन्भावंत्यजत्यन्तेकलेवरम् ॥
तन्तमेवैतिकौन्तेयसदातद्भावभावितः ६ ॥
तस्मात्सर्वेषुकालेषुमामनुस्मरयुध्यच ॥
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम् ७ ॥

मरण अवस्था में जो पुरुष मेरा स्मरण करताहुआ देह त्यागकरता है सो मेरे स्वरूप को प्राप्तहोताहै इसमें कुछ सन्देह नहीं ५ ॥

हे अर्जुन! अन्तकाल जिस २ देवता की भावनासे पुरुष स्मरण करताहुआ देहत्याग करता है सर्वदा उसी भावना से युक्तहोकर उन्हीं देहों में प्राप्त होताहै ६ ॥

इसलिये सर्वदा मेरा स्मरण करतेहुये युद्धकरो और मुझमें मन और बुद्धिको अर्पण करो तो

अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान्यगामिना ॥
परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थानुचिन्तयन् ८ ॥
कविं पुराणमनुशासितार
मणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः ॥
सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूप
मादित्यवर्णन्तमसः परस्तात् ९ ॥

मुझी में प्राप्त होंगे इसमें कुछ संशय नहीं ७ ॥

हे पार्थ! अभ्यासयोग युक्त पुरुष एकाग्रचित्त से स्मरण करतेहुये उसी प्रकाशात्मक परमपुरुष को प्राप्तहोते हैं ८ ॥

जो पुरुष परब्रह्म को सर्वज्ञ अनादि और जगत्का नियमन करनेवाला और परमाणु से भी सूक्ष्म और सम्पूर्ण जगत्का पालन करनेवाला और अचिन्त्यरूप और सूर्यकी नाईं प्रकाशक और प्रकृति से पर जानकर ९ ॥

प्रयाणकालेमनसाचलेन
भक्त्यायुक्तोयोगबलेनचैव ॥
भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्यसम्यक्
सतंपरंपुरुषमुपैतिदिव्यम् १० ॥
यदक्षरंवेदविदोवदन्ति
विशन्तियद्यतयोवीतरागाः ॥
यदिच्छन्तोब्रह्मचर्यञ्चरन्ति
तत्तेपदंसंग्रहेणप्रवक्ष्ये ११ ॥

अन्तकाल में स्थिरमन और योगाभ्यास से भक्तियुक्त भ्रूके मध्य प्राण को अच्छी भांति से निवेश करके उस प्रकाशात्मक परमपुरुष का स्मरण करता है सो उसी दिव्यपुरुष में प्राप्त होता है १० ॥

जिसको वेदान्ती लोग अविनाशी परब्रह्म कहते हैं और रागादि से रहित यती लोग जिस में

सर्वद्वाराणिसंयम्यमनोहृदिनिरुध्यच ॥
मूर्ध्न्याधायात्मनःप्राणमास्थितोयोगधारणाम् १२
ओमित्येकाक्षरंब्रह्मव्याहरन्मामनुस्मरन् ॥
यःप्रयातित्यजन्देहंसयातिपरमांगतिम् १३ ॥

प्रविष्ट होते हैं और तपस्वी लोग जिसके जानने की इच्छासे ब्रह्मचर्य व्रत आचरण करते हैं उस मोक्ष रूप स्थान को हम संक्षेप में तुमसे अब कहते हैं ११ ॥

सम्पूर्ण द्वारोंको रोंक अपने मनको हृदय में स्थिरकर भ्रूमध्य में प्राण को रख योग धारणसे युक्त होके रहे १२ ॥

इसके अनन्तर एक अक्षररूपी परब्रह्म प्रणव को उच्चारण करता भया जोमुझको स्मरण करता है सो शरीर त्यागने पर उत्तमगति को प्राप्त होता है १३ ॥

अनन्यचेताःसततंयोमांस्मरतिनित्यशः ॥
तस्याहंसुलभःपार्थनित्ययुक्तस्ययोगिनः १४ ॥
मामुपेत्यपुनर्जन्मदुःखालयमशाश्वतम् ॥
नाप्नुवन्तिमहात्मानःसंसिद्धिंपरमांगताः १५ ॥
आब्रह्मभुवनाल्लोकाःपुनरावर्तिनोऽर्जुन ॥
मामुपेत्यतुकौन्तेयपुनर्जन्मनविद्यते १६ ॥

हे पार्थ! जो पुरुप निरन्तर अनन्यचित्त होकर प्रतिदिन मेरा स्मरण करताहै ऐसे एकाग्रचित्तवाले योगी के मैं निकट हूं १४ ॥

क्योंकि परमपुरुषार्थ को प्राप्तहुये विवेकीपुरुष मुझको प्राप्तहोकर फिर दुःख के कारण अनित्य जन्मको नहीं पाते १५ ॥

हे अर्जुन ! यहां से ब्रह्मलोक तक जाकर फिर मृत्युलोक में आतेहैं क्योंकि ब्रह्मलोक भी विनाशी है परन्तु मुझमें प्राप्त होनेवाले पुरुष फिर नहीं फिरते हैं १६ ॥

सहस्रयुगपर्यन्तमहर्यद्ब्रह्मणोविदुः ॥
रात्रियुगसहस्रान्तांतेहोरात्रविदोजनाः १७ ॥
अव्यक्ताव्यक्तयःसर्वाःप्रभवन्त्यहरागमे ॥
रात्र्यागमेप्रलीयन्तेतत्रैवाव्यक्तसञ्ज्ञके १८ ॥
भूतग्रामस्सएवायं भूत्वाभूत्वाप्रलीयते ॥
रात्र्यागमेवशःपार्थ प्रभवन्त्यहरागमे १९ ॥

जो लोग योगबल से कार्य्य ब्रह्मके दिन और रात्रिको सहस्र सहस्र चारोंयुगके तुल्य जानतेहैं वे लोग अहोरात्र के जाननेवाले कहलातेहैं १७॥

अव्यक्तरूप कारण से सम्पूर्ण भूत दिनके आरम्भ में उत्पन्न होते हैं ऐसेही रात्रिके आगम में उसी कारण में लय होते हैं १८ ॥

हे अर्जुन ! सम्पूर्णभूत वारंवार जन्मते हुये रात्रि के आगम में लयहोते हैं फिर २ कर्मादि

परस्तस्मात्तुभावोन्योऽव्यक्तोऽव्यक्तात्सनातनः ॥
यस्ससर्वेषुभूतेषुनश्यत्सुनविनश्यति २० ॥
अव्यक्तोऽक्षरइत्युक्तस्तमाहुःपरमांगतिम् ॥
यम्प्राप्यननिवर्त्तन्तेतद्धामपरमम्मम २१ ॥

के आधीन होकर वही दिनके आरम्भ में उत्पन्न होते हैं १९ ॥

अव्यक्तभाव जो चराचर कारण से पर और अनादि है सो सम्पूर्णभूतोंके नष्ट होनेसे भी आप नहीं नष्ट होता २० ॥

वह अव्यक्त अविनाशी कहलाता है उसी को विवेकीलोग उत्कृष्टगति कहते हैं कि जिसको प्राप्त होकर फिर नहीं फिरते वही स्थान मेरा है २१ ॥

पुरुषःसपरःपार्थ भक्त्यालभ्यस्त्वनन्यया ॥
यस्यान्तःस्थानिभूतानि येनसर्वमिदंततम् २२ ॥
यत्रकालेत्वनावृत्तिमावृत्तिंचैवयोगिनः ॥
प्रयातायान्तितंकालंवक्ष्यामिभरतर्षभ २३ ॥
अग्निर्ज्योतिरहःशुक्लःषण्मासाउत्तरायणम् ॥
तत्रप्रयातागच्छन्तिब्रह्मब्रह्मविदोजनाः २४ ॥

हे पार्थ ! जिस कारणभूतमें सम्पूर्ण भूत स्थित हैं और जिससे सम्पूर्ण यह चराचरात्मक जगत् व्याप्त है वह परपुरुष केवल एकाग्र भक्तिसे प्राप्त होनेके योग्य है दूसरे उपाय से नहीं २२ ॥

हे अर्जुन ! जिस कालमें योगी लोग जाके फिरते और नहीं फिरते हैं उसकी अवस्था कहताहूं २३ ॥

अर्चिरभिमानी और दिवसाभिमानी और शुक्लपक्ष अभिमानी छः महीने उत्तरायण के स्वरूप

धूमोरात्रिस्तथाकृष्णःषण्मासादक्षिणायनम् ॥
तत्रचान्द्रमसंज्योतिर्योगीप्राप्यनिवर्त्तते २५ ॥
शुक्लकृष्णेगतीह्येतेजगतःशाश्वतेमते ॥
एकयायात्यनावृत्तिमन्ययावर्त्ततेपुनः २६ ॥

हैं इस उत्तरायण मार्गके जानेवाले ब्रह्मज्ञानीलोग सूर्य्यज्योति द्वारा ब्रह्मको प्राप्तहोते हैं २४ ॥

धूमाभिमानी और रात्रिअभिमानी औरकृष्णपक्ष अभिमानी तीनों देवता दक्षिणायन के स्वरूप हैं इस मार्गके जानेवाले कर्म्मयोगी चन्द्रज्योतिद्वारा स्वर्गको प्राप्तहो वहां इष्टापूर्त्तादि कर्मफलका अनुभवकरके फिर फिरते हैं २५ ॥

शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष पूर्वोक्त दोनों गति जगत्के हेतु नित्य और इष्टहैं इनदोनों मेंसे शुक्लपक्ष गतिवाले नहीं फिरते और कृष्णपक्ष गतिवाले फिरते हैं २६ ॥

नैतेसृतीपार्थजानन्योगीमुह्यतिकश्चन ॥
तस्मात्सर्वेषुकालेषुयोगयुक्तोभवार्जुन २७ ॥
वेदेषुयज्ञेषुतपस्सुचैवदानेषुयत्पुण्यफलंप्रदिष्टम् ॥
अत्येतितत्सर्वमिदंविदित्वायोगीपरंस्थानमुपैति
चाद्यम् २८ ॥

इति श्रीमन्महाभारतेशतसहस्रसंहितायांवैयासि
कयांभीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिष
त्सुब्रह्मविद्यायांयोगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जु
नसंवादे महापुरुषयोगोनामाष्टमो
ऽध्यायः ८ ॥

हे पार्थ अर्जुन ! यह दोनों मार्ग जाननेवाला योगी कभी मोहको नहीं प्राप्तहोता इसलिये सर्वदा तुम योगाभ्यास करो २७ ॥

चारों वेद जानने से यज्ञ तप और दान करने

श्रीभगवानुवाच ॥
इदन्तुतेगुह्यतमंप्रवक्ष्याम्यनसूयवे ॥
ज्ञानंविज्ञानसहितंयज्ज्ञात्वामोक्ष्यसेऽशुभात् १ ॥
राजविद्याराजगुह्यंपवित्रमिदमुत्तमम् ॥
प्रत्यक्षावगमंधर्म्यंसुसुखंकर्त्तुमव्ययम् २ ॥

से जो फल प्राप्य हैं इन से बढ़कर पूर्वोक्त तत्त्व के जानने से उत्तम जगत् का कारणभूत मोक्ष रूपस्थान को प्राप्तहोताहै २८ ॥

पुराणपुरुष उत्तमयोग निरूपण आठवां अध्याय समाप्त हुआ ८ ॥

श्रीभगवान् कहते हैं यह उपासनासहित गोपनीय ज्ञान तुमसे हम कहेंगे क्योंकि तुम निर्दोष हो जिसके जानने से इस अशुभ संसार से मुक्त होगे १ ॥

यह उत्तम विद्या गोपनीय पवित्र और अत्यन्त

अश्रद्दधानाःपुरुषाधर्म्मस्यास्यपरन्तप ॥
अप्राप्यमान्निवर्त्तन्तेमृत्युसंसारवर्त्मनि ३ ॥
मयाततमिदंसर्वं जगदव्यक्तमूर्त्तिना ॥
मत्स्थानिसर्वभूतानिनचाहन्तेष्ववस्थितः ४ ॥

श्रेष्ठ इष्टफल और धर्म्मसहित है इसलिये यह सुखसे तुम्हारेकरने के योग्य है क्योंकि इसका फल अक्षय है १ ॥

हे अर्जुन ! इस मोक्ष के देनेवाले धर्म्म श्रद्धारहित हो पुरुष मुझको नहीं प्राप्तहोता फिर इस मृत्युरूप संसार में आता है ३ ॥

यह सम्पूर्ण जगत् मुझसे व्याप्त है और मैं अव्यक्तमूर्तिहूं और चराचर आदि सम्पूर्ण भूत मुझी में स्थित हैं मैं उनमें नहीं ४ ॥

नचमत्स्थानिभूतानिपश्यमेयोगमैश्वरम् ॥
भूतभृन्नचभूतस्थोममात्माभूतभावनः ५ ॥
यथाकाशस्थितोनित्यंवायुःसर्वत्रगोमहान् ॥
तथासर्वाणिभूतानिमत्स्थानीत्युपधारय ६ ॥
सर्वभूतानिकौन्तेयप्रकृतिंयान्तिमामिकाम् ॥
कल्पक्षयेपुनस्तानिकल्पादौविसृजाम्यहम् ७ ॥

सम्पूर्ण भूत मुझसे स्थित नहीं यह मेरा ऐश्वर्ययोग देखो और भूतों का धारण करनेवाला नहीं हूं परन्तु उनमें स्थित नहीं मेरा स्वरूपही उनका पालन करनेवाला है ५ ॥

जैसे सर्वदा महान् वायु चारों ओर व्याप्त होकर आकाश में स्थित है परन्तु असङ्ग वैसेही जरायुजादि चारों प्रकार के भूत मुझ में स्थित जानो ६ ॥

हे अर्जुन! सम्पूर्ण भूत प्रलयकाल में मेरी

प्रकृतिंस्वामवष्टभ्यविसृजामिपुनःपुनः ॥
भूतग्राममिमंकृत्स्नमवशंप्रकृतेर्वशात् ८ ॥
नचमांतानिकर्माणिनिबध्नन्तिधनञ्जय ॥
उदासीनवदासीनमसक्तंतेषुकर्मसु ९ ॥
मयाध्यक्षेणप्रकृतिःसूयतेसचराचरम् ॥
हेतुनानेनकौन्तेयजगद्विपरिवर्तते १० ॥

त्रिगुणात्मक मायामें लीन होते हैं फिर उन्हें क-
ल्पके आदिमें उत्पन्न करता हूं ७ ॥

मैं अपनी त्रिगुणात्मक मायाको स्वीकारकरके वारंवार प्रलयमें लीन भये हुये फिर सम्पूर्ण भूतों को उनके कर्म्मानुसार उन्हें उत्पन्न करताहूं ८ ॥

हे अर्जुन! पूर्वोक्त कर्म मुझको बन्धके कारण नहीं होसक्ते क्योंकि उन कर्मों से मैं इच्छारहित और उदासीन की नाईं स्थित हूं ९ ॥

हे अर्जुन! मुझ साक्षीभूत के निमित्त से

अवजानन्तिमांमूढामानुषींतनुमाश्रितम् ॥
परम्भावमजानन्तोममभूतमहेश्वरम् ११॥
मोघाशामोघकर्माणोमोघज्ञानाविचेतसः ॥
राक्षसीमासुरींचैवप्रकृतिंमोहनींश्रिताः १२ ॥

त्रिगुणात्मक प्रकृति चराचर जगत् को उत्पन्नकरती है और इसी हेतु से सम्पूर्ण जगत् मेरे निमित्त मात्रसे बारंबार उत्पन्न और नष्टहोजाताहै १० ॥

अविवेकी लोग मुझको मनुष्य देहके सम्बन्ध से मनुष्यही जानकर अनादर करते हैं परन्तु सबभूतोंका कारण ईश्वर स्वरूप परमभाव मेरा नहीं जानते ११॥

उन्हें आसुरी प्रकृति में स्थित जानो जिनकी आशा कर्म और ज्ञान निष्फलहै और उनका चित्त विक्षिप्त और हिंसा अनुमानादि कर्म स्वभाव से युक्त है उनकी बुद्धि भी मोहाक्रान्त है १२ ॥

महात्मानस्तुमांपार्थदैवींप्रकृतिमाश्रिताः ॥
भजन्त्यनन्यमनसोज्ञात्वाभूतादिमव्ययम् १३ ॥
सततंकीर्तयन्तोमांयतन्तश्चदृढव्रताः ॥
नमस्यन्तश्चमांभक्त्यानित्ययुक्ताउपासते १४ ॥

हे अर्जुन ! जो विवेकी लोग सात्त्विक धर्म्म के आश्रयणहो अनन्य चित्तहो मुझको नाशरहित जगत् का कारण जानकर भजते हैं उन्हें दैवीप्रकृति में स्थित जानो १३ ॥

ऐसे लोग सर्वदा मेरे भजन और दृढ़नेमसे मेरे जानने के हेतु उद्योग करते रहते हैं और भक्तिसे युक्तहो नमस्कार करते हुये स्थिर चित्त से मेरी उपासना करते हैं १४ ॥

ज्ञानयज्ञेनचाप्यन्येयजन्तोमामुपासते ।
एकत्वेनपृथक्त्वेनबहुधाविश्वतोमुखम् १५ ॥
अहंक्रतुरहंयज्ञःस्वधाहमहमौषधम् ।
मन्त्रोहमहमेवाज्यमहमग्निरहंहुतम् १६ ॥
पिताहमस्यजगतोमाताधातापितामहः ।
वेद्यंपवित्रमोङ्कारऋक्सामयजुरेवच १७ ॥

कोई लोग ज्ञानयोग से पूजाकरते हुये मेरी उपासना करते हैं अद्वैत उपास्य और उपासक भावसे बहुधा विश्वरूप मुझको जानते हैं १५ ॥

वेद विदित अग्निष्टोमादि ये धर्मशास्त्र उक्त पांचोयज्ञ पितरहेतु श्राद्धादि औषधी होमका मन्त्र सामग्री और अग्निहोमादि सब मही हूं १६ ॥

इस जगत्का पिता माता धाता और पितामह मही हूं ज्ञेय पवित्र ॐकार और ऋग्यजु सामवेद भी मही हूं १७ ॥

गतिर्भर्ताप्रभुःसाक्षीनिवासःशरणंसुहृत् ।
प्रभवःप्रलयस्थानंनिधानंबीजमव्ययम् १८ ॥
तपाम्यहमहंवर्षंनिगृह्णाम्युत्सृजामिच ॥
अमृतंचैवमृत्युश्चसदसच्चाहमर्जुन १९ ॥

कर्मफल और जगत् का पोषणकर्त्ता और नियन्ता साक्षी भोगस्थान रक्षक और हितकर्त्ता और सृष्टिकर्त्ता और संहारकर्त्ता और स्थित धर्म का आधार और आलयका स्थान और अविनाशी कारण मही हूं १८ ॥

सन्ताप करनेवाला सूर्य का तेज और जल आकर्षण करनेवाला और विसर्जन करनेवाला और जीवनमृत्यु और सत् असत् हे अर्जुन ! मही हूं १९ ॥

त्रैविद्यामांसोमपाःपूतपापा
यज्ञैरिष्ट्वास्वर्गतिंप्रार्थयन्ते ।
तेपुण्यमासाद्यसुरेन्द्रलोक
मश्नन्तिदिव्यान्दिविदेवभोगान् २० ॥
तन्तेभुक्त्वास्वर्गलोकंविशालं
क्षीणेपुण्येमर्त्यलोकंविशन्ति ।
एवंत्रयीधर्ममनुप्रपन्ना
गतागतंकामकामालभन्ते २१ ।

तीनों वेदके उपासना करनेवाला यज्ञशेष सोमलता अन्नके अनन्तर कल्मषरहितहो अग्निष्टोमादि यागसमाप्त करके स्वर्गलोक को प्रार्थना करतेहुये वे लोग अपने पुण्य के अनुसार इन्द्रलोक को दिव्य देवभुवन का अनुभव करते हैं २० ॥

वे लोग विशाल स्वर्ग लोक का अनुभव करके पुण्य रहित होने से फिर मृत्युलोक में आते हैं

अनन्याश्चिन्तयन्तोमांयेजनाःपर्युपासते ।
तेषांनित्याभियुक्तानांयोगक्षेमंवहाम्यहम् २२ ॥
येऽप्यन्यदेवताभक्तायजन्तेश्रद्धयान्विताः ।
तेपिमामेवकौन्तेययजन्त्यविधिपूर्वकम् २३ ॥

इसी प्रकार से त्रैवेद के अनुसार चलनेवाले कामादि भोगों की इच्छा से गमनागमन को प्राप्त होते हैं २१ ॥

जो लोग केवल मेरे आश्रय होकर अन्यको त्याग कर उपासना करते हैं उन्हें नित्य कुशल युक्त महीं करताहूं २२ ॥

जो लोग अन्यदेवताकी भक्तिकरके श्रद्धायुक्त पूजाकरते हैं वे भी अविधि पूर्वक मेरीही पूजा करते हैं २३ ॥

अहंहिसर्वयज्ञानांभोक्ताचप्रभुरेवच ॥
नतुमामभिजानन्तितत्त्वेनातश्च्यवन्तिते २४ ॥
यान्तिदेवव्रतादेवान्पितॄन्यान्तिपितृव्रताः ॥
भूतानियान्तिभूतेज्यायान्तिमद्याजिनोपिमाम् २५ ॥
पत्रंपुष्पंफलन्तोयंयोमेभक्त्याप्रयच्छति ।
तदहंभक्त्युपहृतमश्नामिप्रयतात्मनः २६ ॥

सम्पूर्ण यज्ञोंका भोक्ता और स्वामी मैंहीं हूं इस निश्चयसे जो लोग मुझे नहीं जानते वेही संसार में गिरते हैं २४ ॥

इन्द्रादि देवतों के व्रतवाले और पितरों के उपासक और विनायकादि भूतों के उपासना करनेवाले अपने उपास्य में प्राप्त होते हैं और मेरे उपासक मुझमें लय होते हैं २५ ॥

जो भक्तिकरके पत्र पुष्प फल और जल मुझे

यत्करोषियदश्नासियज्जुहोषिददासियत् ।
यत्तपस्यसिकौन्तेयतत्कुरुष्वमदर्पणम् २७ ॥
शुभाशुभफलैरेवंमोक्ष्यसेकर्म्मबन्धनैः ।
संन्यासयोगयुक्तात्माविमुक्तोमामुपैष्यसि २८ ॥

अर्पण करता है उस निश्चय चित्तवाले का फल और पुष्पादि सब मैं लेताहूं २६ ॥

हे अर्जुन ! जो तुम करते खाते होम करते या दान और तप करतेहो सो सब मुझे अर्पण करो २७ ॥

इस प्रकारके शुभाशुभ कर्म्म अर्पण करने से कर्म्मबन्धन से मुक्तहोगे क्योंकि संन्यासयोगयुक्त चित्तवाले मुक्त होकर मुझी में प्राप्त होते हैं २८ ॥

समोहंसर्वभूतेषुनमेद्वेष्योऽस्तिनप्रियः ।
येभजन्तितुमांभक्त्यामयितेतेषुचाप्यहम् २९ ॥
अपिचेत्सुदुराचारोभजतेमामनन्यभाक् ।
साधुरेवसमन्तव्यःसम्यग्व्यवसितोहिसः ३० ॥
क्षिप्रंभवतिधर्मात्माशश्वच्छांतिंनिगच्छति ।
कौन्तेयप्रतिजानीहिनमेभक्तःप्रणश्यति ३१ ॥

मैं सम्पूर्ण भूतों में समहूं और मेरा न कोई शत्रु है न प्रिय जो भक्ति से मेरा भजन करते हैं वे मुझमें हैं और मैं उनमें हौं २९ ॥

जो पुरुष दुराचारी भी हो परन्तु अनन्यभक्त होकर मुझको भजताहै वह साधुमानने केही योग्य और शुभकारी है ३० ॥

हे अर्जुन ! जिसकी बुद्धि धर्म्म में शीघ्र होती है वह पुरुष वारम्बार शान्ति को प्राप्तहोता है

मांहिपार्थव्यपाश्रित्ययेपिस्युःपापयोनयः ।
स्त्रियोवैश्यास्तथाशूद्रास्तेपियान्तिपरांगतिम् ३२ ।
किंपुनर्ब्राह्मणाःपुण्याभक्ताराजर्षयस्तथा ।
अनित्यमसुखंलोकमिमंप्राप्यभजस्वमाम् ३३ ॥

यह बात तुम निश्चय करके जानो कि मेराभक्त नाशको कभी नहीं प्राप्तहोता ३१ ॥

हे अर्जुन ! नीचलोग और स्त्री वैश्य और शूद्रादि भी मेरी शरणागत होने से उत्कृष्टगतिको प्राप्त होते हैं ३२ ॥

सुकृती ब्राह्मण और भजनशील राजऋषिलोगों के लिये सद्गति प्राप्त होने में क्या सन्देहहै इस लिये तुम इस अनित्यशील लोक में शरीर पाकर मेरा भजनकरो ३३ ॥

मन्मनाभवमद्भक्तोमद्याजीमान्नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसियुक्त्वैवमात्मानम्मत्परायणः ३४ ॥

इति श्रीमन्महाभारतेवैयासिक्याम्भीष्मपर्वणि
श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सुब्रह्मविद्यायांयोग-
शास्त्रेश्रीकृष्णार्जुनसंवादेराजविद्याराज-
गुह्ययोगोनामनवमोऽध्यायः ९ ॥

केवल मेरीओर चित्त लगाकर मेरी भक्ति दृढ़होकर मेरी पूजा और मुझ नमस्कार करते हुये मुझीको उत्तमगति समझ मुझ में चित्त एकाग्रकरने से मुझ को प्राप्त होगे ३४ ॥

राजविद्या राजगुह्ययोगनिरूपण नववां
अध्याय समाप्त हुआ ९ ॥

श्रीभगवानुवाच ॥

भूयएवमहावाहोशृणुमेपरमंवचः ।
यत्तेहंप्रीयमाणायवक्ष्यामिहितकाम्यया १ ॥
नमेविदुःसुरगणाःप्रभवंनमहर्षयः ।
अहमादिर्हिदेवानांमहर्षीणांचसर्वशः २ ॥
योमामजमनादिंचवेत्तिलोकमहेश्वरम् ।
असंमूढःसमर्त्येषुसर्वपापैःप्रमुच्यते ३ ॥

भगवान् कहते हैं हे महावाहो अर्जुन! और एक उत्तम वात सुनने के योग्यहै सो सुनो कि जिस कारण मैं प्रेमसे तुम्हारे हितके हेतु कहताहूं १ ॥

इन्द्रादि देवगण और वशिष्ठादि महाऋषि लोग मेरी उत्पत्ति नहीं जानते मैं सम्पूर्ण देवतों और ऋषियों का आदिकारणहूं २ ॥

जो पुरुष मुझको उत्पत्ति रहित सनातन और सम्पूर्ण लोकों का ईश्वर जानता है सो पुरुष

बुद्धिर्ज्ञानमसम्मोहःक्षमासत्यंदमःशमः ।
सुखंदुःखंभवोभावोभयञ्चाभयमेवच ४ ॥
अहिंसासमतातुष्टिस्तपोदानंयशोऽयशः ।
भवन्तिभावाभूतानांमत्तएवपृथग्विधाः ५ ॥

मनुष्यों में मोहरहित होकर सम्पूर्ण पापों से मुक्त होताहै ३ ॥

बुद्धि अर्थात् सारासार विवेक उत्तमज्ञान विषय और निर्मोह सहना सत्य और बाह्य और आन्तरीय इन्द्रियोंका निग्रह सुख दुःख उत्पत्ति प्रलय भय और निर्भय ४ ॥

अहिंसा समता तुष्टि तप दान यश और अयश यह सब प्राणियों के नानाप्रकार के भाव मुझी से उत्पन्नहोते हैं ५ ॥

महर्षयःसप्तपूर्वेचत्वारोमनवस्तथा ।
मद्भावामानसाजातायेषांलोकइमाःप्रजाः ६ ॥
एतांविभूतियोगञ्चममयोवेत्तितत्त्वतः ।
सोविकम्पेनयोगेनयुज्यतेनात्रसंशयः ७ ॥
अहंसर्वस्यप्रभवोमत्तःसर्वंप्रवर्त्तते
इतिमत्वाभजन्तेमांबुधाभावसमन्विताः ८ ॥

भृगुआदि सात महाऋषि और स्वायम्भुवादि मनु और सनकादि चारोंज्ञानी योही मेरे सङ्कल्प से भये जिनकी यह सब ब्राह्मणादि प्रजा लोकमें वर्त्तमान हैं ६ ॥

जो पुरुष मेरी विभूति और ऐश्वर्य लक्षण योगको यथार्थ रूपसे जानता है सो निश्चल चित्तसे एकाग्रसमाधि में युक्त होता है इसमें कुछ सन्देह नहीं ७ ॥

क्योंकि यह सम्पूर्ण जगत्का भृगुआदि रूप

मच्चित्तामद्गतप्राणाबोधयन्तःपरस्परम् ।
कथयन्तश्चमांनित्यंतुष्यन्तिचरमन्तिच ९ ॥
तेषांसततयुक्तानांभजतांप्रीतिपूर्वकम् ।
ददामिबुद्धियोगन्तंयेनमामुपयान्तिते १० ॥

से उत्पत्तिका रूप मैंहीं हूं और मुझीसे बुद्धि और ज्ञान इत्यादि सम्पूर्ण भाव प्रवृत्त होते हैं ऐसा जानकर विवेकी लोग प्रीतियुक्त होके मेरा भजन करते हैं ८ ॥

मुझमें चित्तलगा और चक्षुआदि बाह्य इन्द्रियों को निरोधकर एक दूसरे का प्रमाण पूर्वक बोध करतेहुये सर्वदा मुझको अनादि कहतेहुये सन्तोष और कैवल्य को प्राप्तहोते हैं ९ ॥

वे जो सर्वदा प्रीतिसे भजन करते और चित्त युक्त रहते हैं उनको मैं ऐसा विवेक ज्ञान देताहूं कि जिस करके वे मुझको प्राप्तहोते हैं १० ॥

तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजन्तमः ।
नाशयाम्यात्मभावस्थोज्ञानदीपेनभास्वता ११ ॥

अर्जुनउवाच ॥

परंब्रह्मपरंधामपवित्रंपरमंभवान् ।
पुरुषंशाश्वतंदिव्यमादिदेवमजंविभुम् १२ ॥

उनके अनुग्रह के हेतु मैं उनकी बुद्धि प्रवृत्ति में स्थितहो प्रकाशमान ज्ञानरूप दीपरूप से ज्ञान जनित संसाररूपी अन्धकारको नाशकरताहूं ११ ॥

अर्जुन प्रश्न करते हैं हे कृष्ण ! तुम्हीं परब्रह्म चराचरके आश्रम-परमपवित्र सनातन नित्य पुरुष शब्दवाचक प्रकाशस्वरूप सम्पूर्ण देवतों के आदि उत्पत्ति रहित और व्यापक हो १२ ॥

आहुस्त्वामृषयस्सर्वेदेवर्षिर्नारदस्तथा ।
असितोदेवलोव्यासःस्वयंचैवब्रवीषिमे १३ ॥
सर्वमेतदृतंमन्येयन्मांवदसिकेशव ।
नहितेभगवन्व्यक्तिंविदुर्देवानदानवाः १४ ॥
स्वयमेवात्मनात्मानंवेत्थत्वंपुरुषोत्तम ।
भूतभावनभूतेशदेवदेवजगत्पते १५ ॥

भृगुआदि महाऋषि और नारद जो देवऋषि असित और देवल और व्यास इत्यादि सब तुम्हारा स्वरूप कहते हैं और तुमभी मुझसे कहते हौ १३ ॥

हे केशव ! जो तुम मुझसे कहतेहौ सो मैं सब यथार्थ जानताहूं क्योंकि तुम्हारा स्वरूप देवता और दानवलोग भी नहीं जानते १४ ॥

हे पुरुषोत्तम ! तुम आपही अपने स्वभावसे आप को जानतेहौ और तुम भूतों के उत्पन्नकरने

वक्तुमर्हस्यशेषेणदिव्याह्यात्मविभूतयः ।
याभिर्विभूतिभिर्लोकानिमांस्त्वंव्याप्यतिष्ठसि १६
कथंविद्यामहंयोगिंस्त्वांसदापरिचिन्तयन् ।
केषुकेषुचभावेषुचिन्त्योसिभगवन्मया १७ ॥

वाले और उनके नियमन करनेवाले हौ और तुम देवतों के देवता और जगत्के प्रभुहौ १५ ॥

हे कृष्ण ! जिन विभूतियों से तुम इन सम्पूर्ण लोकों में व्याप्त होकर रहते हौ तिनके कहने के योग्य तुम्हीं हौ क्योंकि वह विभूतियां अति अद्भुत हैं १६ ॥

हे योगिपुरुष भगवन् ! मैं तुम्हें सर्वदा चिन्तन करतेभये कौनसी विभूति सों जानों और किन २ पदार्थों में स्मरण करने के योग्य हौ १७ ॥

विस्तरेणात्मनोयोगंविभूतिञ्चजनार्दन ।
भूयःकथयतृप्तिर्हिशृण्वतोनास्तिमेमृतम् १८ ॥

श्रीभगवानुवाच ॥

हन्ततेकथयिष्यामिदिव्याह्यात्मविभूतयः ।
प्राधान्यतःकुरुश्रेष्ठनास्त्यन्तोविस्तरस्यमे १९ ॥

हे जनार्दन! फिर तुम विस्तार करके अपना योग ऐश्वर्य और विभूति कहो क्योंकि इस अमृत वाक्य के सुननेसे मैं नहीं तृप्त होता १८ ॥

भगवान् कहतेहैं हे कुरुश्रेष्ठ अर्जुन! फिर मैं तुम से अपनी दिव्य आत्मविभूतियों में से जो प्रधान हैं तिन्हें निरूपण करताहूं क्योंकि मेरी विभूतियों के विस्तारका अन्त नहीं है १९ ॥

अहमात्मागुडाकेशसर्वभूताशयस्थितः ।
अहमादिश्चमध्यञ्चभूतानामन्तएवच २० ॥
आदित्यानामहंविष्णुर्ज्योतिषांरविरंशुमान् ।
मरीचिर्मरुतामस्मिनक्षत्राणामहंशशी २१ ॥
वेदानांसामवेदोस्मिदेवानामस्मिवासवः ।
इन्द्रियाणांमनश्चास्मिभूतानामस्मिचेतना २२ ॥

हे गुडाकेश अर्जुन! मैं सब भूतों के अनित्य गुणवृत्ति में सर्व्वज्ञत्व गुणोंसे नियंता होके स्थितहौं और सबभूतों का आदि मध्य अन्तभी मैंहीहूं २० ॥

बारह सूर्य्यों में वामन और प्रकाशित विषयों में कान्तियुक्त सूर्य्य और वायु में मरीचि और नक्षत्रों में चन्द्र भी मैंहीहूं २१ ॥

चारवेदों में सामवेद और देवतों में इन्द्र और ज्ञान इन्द्रियों में मन और भूतों में ज्ञानशक्ति भी मैंहीहूं २२ ॥

रुद्राणांशङ्करश्चास्मिवित्तेशोयक्षरक्षसाम् ।
वसूनांपावकश्चास्मिमेरुःशिखरिणामहम् २३ ॥
पुरोधसांचमुख्यंमांविद्धिपार्थबृहस्पतिम् ।
सेनानीनामहंस्कन्दःसरसामस्मिसागरः २४ ॥
महर्षीणांभृगुरहंगिरामस्म्येकमक्षरम् ।
यज्ञानांजपयज्ञोऽस्मिस्थावराणांहिमालयः २५ ॥

रुद्रों में शंकर यक्ष और राक्षसों में कुवेर आठ वसुओं में अग्नि और शिखरवाले पर्वतों में मेरु मैंही हूं २३ ॥

हे पार्थ ! पुरोहितों में मुख्य बृहस्पति और सेनापतियों में कार्त्तिकेय और तड़ागों में सागर मैंहीहूं २४ ॥

महाऋषियों में भृगु और वाणियों में प्रणव और यज्ञों में जपयज्ञ और स्थावरों में हिमाचल मैंहीहूं २५ ॥

अश्वत्थःसर्ववृक्षाणांदेवर्षीणांचनारदः ।
गन्धर्वाणांचित्ररथःसिद्धानांकपिलोमुनिः २६ ॥
उच्चैःश्रवसमश्वानांविद्धिमाममृतोद्भवम् ।
ऐरावतंगजेन्द्राणांनराणांचनराधिपम् २७ ॥
आयुधानामहंवज्रंधेनूनामस्मिकामधुक् ।
प्रजनश्चास्मिकन्दर्पःसर्पाणामस्मिवासुकिः२८॥

सम्पूर्ण वृक्षोंमें पीपर और देवऋषियोंमें नारद और गन्धर्वों में चित्ररथ और सिद्धोंमें कपिलमुनि मैंहीहूं २६ ॥

घोड़ों में उच्चैःश्रवा नामक जो क्षीरसागर में उत्पन्न भयाहुआ अश्व है और गजों में ऐरावत और मनुष्यों में राजा मैंहीहूं २७ ॥

शस्त्रों में वज्र और गौवों में कामधेनु और प्रजा उत्पत्ति करनेवालों में कामदेव और सर्पों में वासुकि मैंहीहूं २८ ॥

अनन्तश्चास्मिनागानांवरुणोयादसामहम् ।
पितॄणामर्य्यमाचास्मियमःसंयमतामहम् २९ ॥
प्रह्लादश्चास्मिदैत्यानांकालःकलयतामहम् ।
मृगाणांचमृगेन्द्रोहंवैनतेयश्चपक्षिणाम् ३० ॥
पवनःपवतामस्मिरामःशस्त्रभृतामहम् ।
झषाणांमकरश्चास्मिस्रोतसामस्मिजाह्नवी ३१ ॥

निर्विषसर्पों में अनन्त अर्थात् आदि शेष और जलवासियों में वरुण और पितृगणों में अर्य्यमा और दण्ड करनेवालों में यमराज मैंहीहूं २६ ॥

दैत्यों में प्रह्लाद और नाश करनेवालों में काल और मृगों में राजसिंह और पक्षियों में गरुड़ मैंही हूं ३० ॥

पवित्र करनेवालों में वायु और शस्त्रधारियों में राम और जलचर मच्छादिकों में मगर और नदियों में गंगा मैंही हूं ३१ ॥

सर्गाणामादिरन्तश्चमध्यञ्चैवाहमर्जुन ।
अध्यात्मविद्याविद्यानांवादःप्रवदतामहम् ३२ ॥
अक्षराणामकारोऽस्मिद्वन्द्वःसामासिकस्यच ।
अहमेवाक्षयःकालोधाताहंविश्वतोमुखः ३३ ॥
मृत्युस्सर्वहरश्चाहमुद्भवश्चभविष्यताम् ।
कीर्तिःश्रीर्वाक्चनारीणांस्मृतिर्मेधाधृतिःक्षमा ३४

उत्पन्न वस्तुओं में आदि अन्तमें और मध्य में और विद्याओं में वेदान्तविद्या और वादियों में वाद मैंही हूं ३२ ॥

वर्णों में अकार और समासोंमें समूहार्थक द्वन्द्व समास और क्षणादिकालोंमें अक्षयकाल और पालन करनेवालोंमें सब कर्मफलविधाता धाता मैंही हूं ३३

हरणहारोंमें मृत्यु और भविष्यकल्पों में अभ्युदय अर्थात् इष्टअर्थ और लाभ मैंही हूं और स्त्री शब्दवाच्य में, कीर्त्ति वाणी सम्पत्ति स्मृति बुद्धि धारणशक्ति और क्षमा मैंही हूं ३४ ॥

बृहत्सामतथासाम्नांगायत्रीछन्दसामहम् ।
मासानांमार्गशीर्षोहमृतूनांकुसुमाकरः ३५ ॥
द्यूतंछलयतामस्मितेजस्तेजस्विनामहम् ।
जयोस्मिव्यवसायोस्मिसत्त्वंसत्त्ववतामहम् ३६ ॥
वृष्णीनांवासुदेवोस्मिपाण्डवानांधनञ्जयः ।
मुनीनामप्यहंव्यासःकवीनामुशनाकविः ३७ ॥

सामऋचाओंमें इन्द्रस्तुति की बृहत्साम ऋचा और छन्दों में गायत्रीछन्द और महीनों में अगहन और ऋतुओं में वसन्तऋतु मैंही हूं ३५ ॥

छलियों में जुवा और तेजस्वियों में तेज और जयशीलों में जय उद्योगियों में व्यवसाय और सत्त्ववालों में सत्त्वरूप मैंही हूं ३६ ॥

वृष्णियों में वासुदेव मैं जो तुझे उपदेश कर रहाहूं और पाण्डवों में तूभी मेरी विभूति है और मुनि अर्थात् वेदार्थमननशीलों में वेदव्यास और कवियों में शुक्राचार्य्य मैंही हूं ३७ ॥

दण्डोदमयतामस्मिनीतिरस्मिजिगीपताम् ।
मौनञ्चैवाऽस्मिगुह्यानांज्ञानंज्ञानवतामहम् ३८ ॥
यच्चापिसर्वभूतानांबीजन्तदहमर्जुन ।
नतदस्तिविनायत्स्यान्मयाभूतञ्चराचरम् ३९ ॥
नान्तोऽस्तिममदिव्यानांविभूतीनाम्परन्तप ।
एषतूद्देशतःप्रोक्तोविभूतेर्विस्तरोमया ४० ॥

शिक्षा करनेवालों में दण्ड और जय इच्छा करनेवालों में नीति और गोपनीयों में मौन और ज्ञानियों में ज्ञान मैंही हूं ३८ ॥

हे अर्जुन ! सम्पूर्ण भूतों का जो कारण है सो मैंही हूं क्योंकि विना कारण कुछ नहीं होसक्ता इसलिये चराचरका कारण मैंही हूं ३९ ॥

हे परंतप अर्जुन ! मेरी दिव्य विभूतियों का अन्त नहीं संक्षेप से तुम्हारे हेतु इनसब विभूतियों का विस्तार मैंने कहा ४० ॥

यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वंश्रीमदूर्जितमेववा ।
तत्तदेवाऽवगच्छत्वंममतेजोंशसम्भवम् ४१ ॥
अथवाबहुनोक्तेनकिंज्ञानेनतवार्जुन ।
विष्टभ्याहमिदंकृत्स्नमेकांशेनस्थितोजगत् ४२ ॥
इति श्रीभीष्मपर्वणिश्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सुब्र
ह्मविद्यायांयोगशास्त्रेश्रीकृष्णार्जुनसंवादेवि
भूतियोगोनामदशमोऽध्याय- १० ॥

जो जो विभूति तेज सम्पत्ति युक्त वस्तु विस्तार से हैं सो सो मेरे अंश से उत्पन्न जानो ४१ ॥

हे अर्जुन ! इस अनेक प्रकार के भेद ज्ञान से क्या होगा क्योंकि यह सम्पूर्ण वस्तु विस्तारसे हैं सो मेरे अंशसे उत्पन्न जानो ४२ ॥

विभूतियोगनिरूपणनाम दशवां अध्याय
समाप्त हुआ १० ॥

एकादश अध्याय ॥

अर्जुनउवाच ॥

मदनुग्रहायपरमंगुह्यमध्यात्मसञ्ज्ञितम् ।
यत्त्वयोक्तंवचस्तेनमोहोऽयंविगतोमम १ ॥
भवाप्ययौहिभूतानांश्रुतौविस्तरशोमया ।
त्वत्तःकमलपत्राक्ष माहात्म्यमपिचाव्ययम् २ ॥
एवमेतद्यथात्थत्वमात्मानम्परमेश्वर ।
द्रष्टुमिच्छामितेरूपमैश्वरंपुरुषोत्तम ३ ॥

अर्जुन प्रश्न करते हैं मेरे शोक निवृत्ति के हेतु गोपनीय परमार्थतत्त्व अध्यात्मविषयक जो वाक्य आपने कहा उससे मेरा मोह नाश हुआ १ ॥

हे श्रीकृष्ण ! मैंने भूतोंकी उत्पत्ति और नाश बारंबार तुम से सुना और तुम्हारा सृष्टि कर्तृत्वादि माहात्म्य जो अक्षय है सो भी सुना २ ॥

हे परमेश्वर ! जिस प्रकार से तुमने अपना स्वरूप वर्णन कियाहै सो तुम्हारा ईश्वर सम्ब-

मन्यसेयदितच्छक्यंमयाद्रष्टुमितिप्रभो ।
योगेश्वरततोमेत्वंदर्शयात्मानमव्ययम् ४ ॥

श्रीभगवानुवाच ॥

पश्यमेपार्थरूपाणिशतशोथसहस्रशः ।
नानाविधानिदिव्यानिनानावर्णाकृतीनिच ५ ॥
पश्यादित्यान्वसून्रुद्रानश्विनौमरुतस्तथा ।
बहून्यदृष्टपूर्वाणिपश्याश्चर्याणिभारत ६ ॥

न्धी विश्वरूप मैं देखनेकी इच्छा करताहूं ३ ॥

हे प्रभु योगियों के ईश्वर ! यदि मैं तुम्हारे विश्वरूप दर्शन के योग्यहों तो तुम सनातन ईश्वररूप को दिखावो ४ ॥

भगवान् उत्तर देते हैं हे पार्थ अर्जुन ! मेरे लाखों प्रकारके रूप जो नानाविधि के और दिव्य अनेक वर्ण आकृतियों से युक्तहैं तिन्हें देखो ५ ॥

हे पार्थ अर्जुन ! बारह सूर्य्य और आठवसु

इहैकस्थं जगत्कृत्स्नं पश्याद्य सचराचरम् ।
ममदेहेगुडाकेशयच्चान्यद्द्रष्टुमिच्छसि ७ ॥
नतुमांशक्यसेद्रष्टुमनेनैवस्वचक्षुषा ।
दिव्यंददामितेचक्षुःपश्यमेयोगमैश्वरम् ८ ॥

और ग्यारहरुद्र और दो अश्विनी देवतों को और उंचासवायु और बहुतसे आश्चर्य कि जिन्हें पहिले कभी न देखे तिन्हें देखो ६ ॥

हे गुडाकेश अर्जुन ! मेरे शरीर में एकत्र स्थित चराचर सहित सम्पूर्ण जगत् देखो इस के अनन्तर और भी जो वस्तु देखनेकी इच्छा करो सो सब देखलो ७ ॥

तुम मुझको इन आंखों से न देख सकोगे इस लिये मैं तुम्हें दिव्यदृष्टि देताहूं उस दृष्टि से तुम मेरे विश्वरूप योग को देखो ८ ॥

सञ्जयउवाच ॥

एवमुक्त्वाततोराजन्महायोगेश्वरोहरिः ।
दर्शयामासपार्थायपरमंरूपमैश्वरम् ९ ॥
अनेकवक्त्रनयनमनेकाद्भुतदर्शनम् ।
अनेकदिव्याभरणंदिव्यानेकोद्यतायुधम् १० ॥
दिव्यमाल्याम्बरधरंदिव्यगन्धानुलेपनम् ।
सर्व्वाश्चर्यमयंदीप्तमनन्तंविश्वतोमुखम् ११ ॥

संजय धृतराष्ट्र से कहते हैं कि हे राजा ! योगियों के ईश्वर श्रीकृष्णचन्द्र अर्जुन से इस कहनेके अनन्तर अपना उत्कृष्ट विश्वरूपका दर्शन उन्हें दिखाते भये ९ ॥

अनेक मुख और अनेक नेत्र और अनेकप्रकार के विचित्र दर्शन और अनेक प्रकाशमान भूषण से युक्त और दिव्य अनेक शस्त्र धारण किये १० ॥

दिव्यमाला और वस्त्रों से अलंकृत और दिव्य

दिविसूर्यसहस्रस्यभवेद्युगपदुत्थिता ।
यदिभाःसदृशीसास्याद्भासस्तस्यमहात्मनः १२ ॥
तत्रैकस्थंजगत्कृत्स्नंप्रविभक्तमनेकधा ।
अपश्यद्देवदेवस्यशरीरेपाण्डवस्तदा १३ ॥

गन्धों से लिप्त और सम्पूर्ण आश्चर्यों से युक्त स्वतः प्रकाशमान सर्वत्र मुखवाला अनन्तरूप दिखाते भये ११ ॥

यदि आकाश में सहस्रों सूर्य्योंकी प्रभा एकही समय उदयहो तो उस परमेश्वरकी प्रभाके सदृश किंचितहो १२ ॥

उस समय अर्जुन देवों के देव श्रीकृष्ण के शरीर में सम्पूर्ण जगत् एकत्र स्थित यद्यपि रहा तथापि अनेक प्रकार के विभाग से देखता भया १३ ॥

ततःसविस्मयाविष्टोहृष्टरोमाधनञ्जयः ।
प्रणम्यशिरसादेवंकृताञ्जलिरभाषत १४ ॥

अर्जुनउवाच ॥

पश्यामिदेवांस्तवदेवदेहे
सर्वांस्तथाभूतविशेषसङ्घान् ।
ब्रह्माणमीशंकमलासनस्थ
मृषींश्चसर्वानुरगांश्चदिव्यान् १५ ॥

इसके उपरान्त अर्जुन आश्चर्ययुक्त होकर रोमांचयुक्त श्रीकृष्णचन्द्र को दण्डवत कर हाथ जोड़ के विनय करता भया १४ ॥

हे कृष्णदेव ! तुम्हारे शरीर में सम्पूर्ण देवतों को और भी अचरचरादि प्राणी समूह को और कमलासन पर बैठे हुवे ब्रह्मदेव महादेव और सम्पूर्ण ऋषियों और दिव्य वासुकि आदि नागों को देखता हूं १५ ॥

अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रं
पश्यामित्वांसर्वतोनन्तरूपम् ।
नान्तन्नमध्यन्नपुनस्तवादिं
पश्यामिविश्वेश्वरविश्वरूपम् १६ ॥
किरीटिनंगदिनंचक्रिणञ्च
तेजोराशिंसर्वतोदीप्तिमन्तम् ।
पश्यामित्वांदुर्निरीक्ष्यंसमन्ता-
द्दीप्तानलार्कद्युतिमप्रमेयम् १७ ॥

हे विश्वेश्वर श्रीकृष्ण ! तुम्हारे अनेक बाहु उदर और मुख अनन्तरूप देखताहूं परन्तु तुम्हारे विश्वरूप का आदि अन्त और मध्य तीनों नहीं देखता १६ ॥

हे श्रीकृष्ण ! तुम्हें किरीट गदा चक्र धारण किये तेजकी खानि और सब प्रकाशमान देखता हूं और तुम प्राणी से जानने के योग्य नहीं अग्नि

त्वमक्षरम्परमंवेदितव्यं
त्वमस्यविश्वस्यपरंनिधानम् ।
त्वमव्ययःशाश्वतधर्मगोप्ता
सनातनस्त्वंपुरुषोमतोमे १८ ॥
अनादिमध्यान्तमनन्तवीर्य्य
मनन्तबाहुंशशिसूर्य्यनेत्रम् ।
पश्यामित्वांदीप्तहुताशवक्त्रं
स्वतेजसाविश्वमिदन्तपन्तम् १९ ॥

और तुम्हारी अपरिमित प्रभा की नाईं देख है। इसलिये तुम कठिन से दिखाई देते हो ॥ १७ ॥

हे श्रीकृष्ण ! तुम अक्षर परम ब्रह्म और ज्ञानियों के जानने के योग्य हो। और तुम्हीं इस जगत् के परमाश्रय और नित्य काल से सनातन और शाश्वत धर्मों के पालन करनेवाले हो। इस-लिये तुम सनातन पुरुष मुझे जान पड़ते हो ॥ १८ ॥

हे श्रीकृष्ण ! तुम आदि मध्य और अन्त

रूपम्महत्तेबहुवक्त्रनेत्रं
महाबाहोबहुबाहूरुपादम् ।
बहूदरंबहुदंष्ट्राकरालं
दृष्ट्वालोकाःप्रव्यथितास्तथाहम् २३ ॥
नभःस्पृशंदीप्तमनेकवर्णं
व्यात्ताननंदीप्तविशालनेत्रम् ।
दृष्ट्वाहित्वांप्रव्यथितान्तरात्मा
धृतिंनविंदामिशमञ्चविष्णो २४

यक्ष और सिद्धादि आश्चर्य युक्तहो तुमको देखते हैं २२ ॥

हे महाबाहो श्रीकृष्ण ! तुम्हारा विशालरूप बहुतसे मुख नेत्र बाहु पेट जंघा पाद और अनेक बड़ेबड़े दांतोंसे कराल है जिसे लोग देखकर भयको प्राप्तभये और वैसाही मैंभी भयसे कम्पायमानहूं २३॥

हे विष्णु ! तुम्हारा स्वरूप आकाश से छुये

दंष्ट्राकरालानिचतेमुखानि
दृष्ट्वैवकालानलसन्निभानि ।
दिशोनजानेनलभेचशर्म
प्रसीददेवेशजगन्निवास २५ ॥

हुये प्रकाशवान् और अनेक वर्णसे युक्तहै, और खुला मुख बड़े बड़े नेत्रों से प्रकाशित है सो तुम्ह देखकर मेरा मन संताप को प्राप्त भया और मुझमें धैर्य्य और शमहीं न रहा २४ ॥

हे जगन्निवासी श्रीकृष्ण ! तुम्हारे बड़े बड़े दांतों से भयानक मुख प्रलयकाल की अग्नि के समान देखकर दिशाभ्रम हुआ और सुख विस्मरण हुआ इसलिये हे देवेश ! मैं तुम्हारे शरणागतहूं मुझपर अनुग्रह करो २५ ॥

अमीचत्वांधृतराष्ट्रस्यपुत्राः
सर्वेसहैवावनिपालसङ्घैः ।
भीष्मोद्रोणःसूतपुत्रस्तथासौ
सहास्मदीयैरपियोधमुख्यैः २६ ॥
वक्त्राणितेत्वरमाणाविशन्ति
दंष्ट्राकरालानिभयानकानि ।
केचिद्विलग्नादशनान्तरेषु
संदृश्यन्तेचूर्णितैरुत्तमाङ्गैः २७ ॥

हे श्रीकृष्ण ! ये धृतराष्ट्रके पुत्र राजमण्डली सहित भीष्म द्रोण और कर्ण हमारे योद्धों के साथ २६ ॥

तुम्हारे भयानक अतिउग्र मुखमें शीघ्रता करते हुये चले जातेहैं उनमें से कोई तुम्हारे दांतों में लटके हुये और कोई फटे मस्तक से देख पड़ते हैं २७ ॥

यथानदीनांबहवोम्बुवेगाः
समुद्रमेवाभिमुखाद्रवन्ति ।
तथातवामीनरलोकवीरा
विशन्तिवक्त्राण्यभिविज्वलन्ति २८ ॥
यथाप्रदीप्तंज्वलनंपतंगा
विशन्तिनाशायसमृद्धवेगाः ।
तथैवनाशायविशन्तिलोका
स्तवापिवक्त्राणिसमृद्धवेगाः २९ ॥

जैसे नदियों के जलका वेग सीधे समुद्र में शीघ्रता से जाताहै वैसेही ये भीष्म द्रोण आदि राजालोग तुम्हारे प्रकाशित मुखमें चलेजातेहैं २८॥ जैसे जलती हुई अग्निमें पतंग बड़े वेगसे नाश के हेतु जा गिरते हैं वैसेही ये लोग नाश होनेके लिये तुम्हारे मुखमें वेगसे जाते हैं २९ ॥

लेलिह्यसेग्रसमानः समन्ता
ल्लोकान्समग्रान्वदनैर्ज्वलद्भिः ।
तेजोभिरापूर्य्यजगत्समग्रं
भासस्तवोग्राःप्रतपन्तिविष्णो ३० ॥
आख्याहिमेकोभवानुग्ररूपो
नमोस्तुतेदेववरप्रसीद ।
विज्ञातुमिच्छामिभवन्तमाद्यं
नहिप्रजानामितवप्रवृत्तिम् ३१ ॥

हे विष्णु ! तुम अपने प्रज्वलित मुखमें चारों ओर से सम्पूर्ण लोगोंको निगलते हुये खाते जाते हो और तुम्हारा प्रकाश अपने पराक्रम से जगत् को घेरकर सन्ताप करताहै ३० ॥

अर्जुन कहते हैं कि हे देवताओंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्ण-चन्द्रजी ! आप प्रसन्न होके मुझसे यह कहिये कि आप भयानकरूप कौनहैं आपके नमस्कारहै यह

श्रीभगवानुवाच ॥

कालोऽस्मिलोकक्षयकृत्प्रवृद्धो
लोकान्समाहर्तुमिहप्रवृत्तः ।
ऋतेऽपित्वांनभविष्यन्तिसर्वे
येऽवस्थिताःप्रत्यनीकेषुयोधाः ३२ ॥

मैं आदि पुरुष जो आपहैं तिनसे जानना चाहताहूं क्योंकि आपकी प्रवृत्ति को नहीं जानताहूं ३१ ॥

तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी बोले कि हे अर्जुन! मैं संसारका नाश करनेवाला बढ़ाहुआ कालरूप हूं मनुष्यों के नाश करने के लिये यहां प्रवृत्त हुआहूं पांचों पांडवों को छोड़के और जितने शत्रु के व तुम्हारे योद्धा हैं ते कोई शेष न रहेंगे अर्थात् यहांपर सबका नाश होजायगा ३२ ॥

तस्मात्त्वमुत्तिष्ठयशोलभस्व
जित्वाशत्रून्भुंक्ष्वराज्यंसमृद्धम् ।
मयैवैतेनिहताःपूर्वमेव
निमित्तमात्रंभवसव्यसाचिन् ३३ ॥
द्रोणञ्चभीष्मञ्चजयद्रथञ्च
कर्णन्तथान्यानपियोधवीरान् ।
मयाहतांस्त्वंजहिमाव्यथिष्ठा
युध्यस्वजेतासिरणेसपत्नान् ३४ ॥

तिससे हे अर्जुन ! तुम उठो यशको प्राप्त होवो और शत्रुओं को जीतके ऐश्वर्य्य सहित राज्यको भोगकरो हमकरके शत्रुजन पहिलेही से मानो नाश कियेहुये हैं तुम केवल निमित्तमात्रही होगे और संहार तो सबको मैंही करूंगा ३३ ॥

द्रोणाचार्य्य, भीष्म, जयद्रथ, कर्ण तथा और जे शत्रुओं में श्रेष्ठ २ योद्धा हैं तेहमीं करके नाश

संजयउवाच ॥

एतच्छ्रुत्वावचनंकेशवस्य
कृताञ्जलिर्वेपमानःकिरीटी ।
नमस्कृत्वाभूयएवाहकृष्णं
सगद्गदम्भीतभीतःप्रणम्य ३५ ॥

कियेहुये समझिये अर्थात् मैं अपनी कालदृष्टि से सबकी आयु क्षीणकरदूंगा और तुम तो संग्राममें वैरियों के जीतनेवालेहो शोच छोड़ के शत्रुओं से युद्ध कीजिये ३४ ॥

संजय धृतराष्ट्रसे कहते हैं कि किरीटी अर्जुन कृष्ण के वाक्य सुनकर हाथ जोड़कर कम्पायमानहो नमस्कारकर भय से नम्रहो गद्गदवाणी से कहा ३५ ॥

अर्जुन उवाच ॥

स्थानेहृषीकेशतवप्रकीर्त्या
जगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यतेच ।
रक्षांसिभीतानिदिशोद्रवन्ति
सर्वेनमस्यन्तिचसिद्धसङ्घाः ३६ ॥
कस्माच्चतेननमेरन्महात्मन्
गरीयसेब्रह्मणोप्यादिकर्त्रे ।
अनन्तदेवेशजगन्निवास
त्वमक्षरंसदसत्तत्परंयत् ३७॥

अर्जुन प्रश्न करते हैं हे श्रीकृष्ण ! तुम्हारे माहात्म्य के संकीर्तनसे जगत् सन्तोष और अनुराग को प्राप्त होताहै और राक्षसगण भयसे चारोंओर भागेजाते हैं और सिद्धोंका समूह तुमको नमस्कार करता है सो यह युक्तही है ३६ ॥

हे कृष्ण ! महात्मा सिद्धगण क्यों न तुमको

त्वमादिदेवःपुरुषःपुराण
स्त्वमस्यविश्वस्यपरंनिधानम् ।
वेत्तासिवेद्यञ्चपरञ्चधाम
त्वयाततंविश्वमनन्तरूप ३८ ॥

नमस्कार करेंगे क्योंकि तुम ब्रह्मा के गुरु और जनकभी हौ और तुम अनन्त और देवतों के ईश और जगत् के निवासस्थान और अविनाशी हौ और व्यक्त अव्यक्त से परभी तुम्हींहौ ३७ ॥

हे अनन्तरूप श्रीकृष्ण ! तुम्हीं देवतोंके आदि और पुराणपुरुष और जगत् के आदि कारण और जाननेवाले और जाननेयोग्य वस्तु और मोक्षस्थान भी तुम्हीं हौ क्योंकि तुम्हीं सम्पूर्ण जगत् में व्याप्तहौ ३८ ॥

वायुर्यमोग्निर्वरुणश्शशांकः
प्रजापतिस्त्वंप्रपितामहश्च ।
नमोनमस्तेस्तुसहस्रकृत्वः
पुनश्चभूयोऽपिनमोनमस्ते ।३९।
नमःपुरस्तादथपृष्ठतस्ते
नमोस्तुतेसर्वतएवसर्व ।
अनन्तवीर्यामितविक्रमस्त्वं
सर्वंसमाप्नोषिततोसिसर्वः ॥४०॥

हे श्रीकृष्ण! तुम्हीं वायु यम अग्नि वरुण चन्द्र, प्रजापति ब्रह्मा और ब्रह्माके भी जनकहौ मैं सहस्रवार आपको नमस्कारकरऔ फिर फिर वारंवार नमस्कार करताहूं ३९ ॥

हे अमितपराक्रमी! तुमको आगे पीछे और सर्वत्र नमस्कार करताहूं क्योंकि सर्वत्र सर्व्वरूप वे तुम्हींहौ और तुम्हारी गतिका अन्त नहीं सर्व में व्याप्त और सब से परभी तुम्हींहौ ४० ॥

सखेतिमत्वाप्रसभंयदुक्तं
हेकृष्ण ! हेयादव ! हेसखेति ।
अजानतामहिमानंतवेदं
मयाप्रमादात्प्रणयेनवापि ४१ ॥
यच्चावहासार्थमसत्कृतोऽसि
विहारशय्यासनभोजनेषु ।
एकोथवाप्यच्युततत्समक्षं
तत्क्षामयेत्वामहमप्रमेयम् ४२ ॥

तुमको मित्रजानकर हे श्रीकृष्ण ! हे यादव ! सखा करके असय्यादा वचन जो मैंने आपकी महिमा न जानकर कहा है सो अविवेकता या प्रीति से कहा उसे क्षमा करना चाहिये ४१ ॥

हे श्रीकृष्ण ! और जो कुछ ठट्ठे या विहार

पितासिलोकस्यचराचरस्य
त्त्वमस्यपूज्यश्चगुरुर्गरीयान् ।
नत्त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकःकुतोऽन्यो
लोकत्रयेप्यप्रतिमप्रभावः ४३ ॥

या शयन या आसन या भोजन के समय एकान्त में या जनों के सामने असत्कार मुझ से भया है उसके क्षमा के लिये मैं आपसे हे अच्युत ! प्रार्थना करताहूं ४२ ॥

इस चराचर लोकके आदि कारण और पूज्य गुरू और श्रेष्ठभी तुम्हीं हो क्योंकि तुम्हारे प्रभाव के सामने कोई नहीं इसलिये स्वर्ग मर्त्य पाताळ तीनोंलोक में तुम्हारे समान और तुम से अधिक कोई नहीं ४३ ॥

तस्मात्प्रणम्य प्रणिधाय कायं
प्रसादये त्वामहमीशमीड्यम् ।
पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः
प्रियःप्रियायार्हसि देव सोढुम् ४४ ॥
अदृष्टपूर्वं हृषितोस्मि दृष्ट्वा
भयेन च प्रव्यथितं मनो मे ।
तदेव मे दर्शय देव रूपं
प्रसीद देवेश जगन्निवास ४५ ॥

इसलिये आपको नमस्कार करके प्रार्थनाकरताहूं क्योंकि आप स्तुति के योग्य और ईश्वरहो जैसे पिता पुत्रका और सखा अपने मित्रका और अपने प्रियका सहन करताहै वैसेही आप हमारे अपराधको क्षमाकीजिये ४४ ॥

हे जगन्निवास ! पहिले जो विश्वरूप तुम्हारा कभी नहीं देखा सो देखकर हर्षको प्राप्तभया

किरीटिनं गदिनञ्चक्रहस्त
मिच्छामि त्वां द्रष्टुमहन्तथैव ।
तेनैव रूपेण चतुर्भुजेन
सहस्रबाहो भव विश्वमूर्ते ४६ ॥
श्रीभगवानुवाच ॥
मया प्रसन्नेन तवार्जुनेदं
रूपं परं दर्शितमात्मयोगात् ।
तेजोमयं विश्वमनन्तमाद्यं
यन्मे त्वदन्येन न दृष्टपूर्वम् ४७ ॥

अब मेरा मन व्याकुलहै इसलिये पहिलारूप दिखावो और हे देवेश ! मुझपर अनुग्रह करो ४५ ॥

किरीट गदा धारणकिये और चक्र हाथ में लियेहुये आपको देखा चाहताहूं वैसेही चतुर्भुज रूपसे युक्तहो क्योंकि आप सहस्रबाहु और विश्वमूर्त्तिहो ४६ ॥

भगवान् कहते हैं हे अर्जुन ! हमारी प्रसन्न

न वेदयज्ञाध्ययनैर्नदानै
र्न च क्रियाभिर्नतपोभिरुग्रैः ।
एवंरूपः शक्योऽहं नृलोके
द्रष्टुं त्वदन्येन कुरुप्रवीर ! ४८ ॥

और आत्मयोग से इस परमउत्कृष्टरूप का तुमको दर्शन भया और यह रूप मेरा तेजोमय विश्व-स्वरूप कि जिसका आदि अन्त नहीं तुम्हारे व्यतिरिक्त दूसरे ने कभी नहीं देखा ४७ ॥

हे कुरुश्रेष्ठ अर्जुन ! इस मनुष्य लोकमें वेद यज्ञ अध्ययन दान क्रिया और उग्रतपस्या आदि से यह मेरा स्वरूप तुम्हारे व्यतिरिक्त दूसरे के देखने के योग्य नहीं ४८ ॥

माते व्यथा मा च विमूढभावो
दृष्ट्वा रूपं घोरमीदृङ्ममेदम् ।
व्यपेतभीः प्रीतमनाःपुनस्त्वं
तदेव मे रूपमिदम्प्रपश्य ४९ ॥

सञ्जयउवाच ॥

इत्यर्जुनं वासुदेवस्तथोक्त्वा
स्वकं रूपं दर्शयामास भूयः ।
आश्वासयामास च भीतमेनं
भूत्वा पुनः सौम्यवपुर्महात्मा ५० ॥

हे अर्जुन ! इस प्रकार का मेरा घोर स्वरूप देखकर व्यथा और मोहको मत प्राप्तहो और भय को त्यागकर स्वस्थचित्तहो फिर तुम मेरा पूर्वरूप अब देखो ४९ ॥

सञ्जय धृतराष्ट्रसे कहते हैं कि इसप्रकार से श्रीकृष्ण वासुदेव कहकर अर्जुन को अपना पू-

अर्जुनउवाच ॥

दृष्ट्वेदंमानुषंरूपन्तवसौम्यंजनार्दन ।
इदानीमस्मिसंवृत्तःसचेताःप्रकृतिंगतः ५१ ॥

श्रीभगवानुवाच ॥

सुदुर्दर्शमिदंरूपंदृष्टवानसियन्मम ।
देवाअप्यस्यरूपस्यनित्यंदर्शनकाङ्क्षिणः ५२ ॥

वरूप दिखाते भये और भयवान् अर्ज्जुन को श्रीकृष्ण महात्मा शान्तरूप धारण करके प्रेमपूर्वक समझाते भये ५० ॥

अर्ज्जुन कहते हैं हे जनार्दन ! तुम्हारा यह सुन्दर भव्यरूप देखकर अब भयसे निवृत्तहो स्वस्थचित्त से अपने स्वभावको प्राप्त भयाहूं ५१ ॥

श्रीभगवान् कहते हैं कि हे अर्जुन ! मेरा यह स्वरूप कष्टसे भी देखने के योग्य नहीं सो तुमने

नाहंवेदैर्नतपसानदानेननचेज्यया ।
शक्यएवंविधोद्रष्टुंदृष्टवानसिमांयथा ५३ ॥
भक्त्यात्वनन्ययाशक्योऽहमेवंविधोऽर्जुन ! ।
ज्ञातुंद्रष्टुञ्चतत्त्वेनप्रवेष्टुञ्चपरन्तप ! ५४ ॥

देखा और इस रूपको इन्द्रादि देवतालोग भी सर्वदा देखने की इच्छा करते हैं ५२ ॥

मैं चारों वेद तपस्या दान और यज्ञादि से इस प्रकार से देखने के योग्य नहीं हूं कि जैसा तुमने मुझे देखा है ५३ ॥

हे परन्तप अर्जुन ! यह मेरा स्वरूप केवल एकाग्रभक्तिही से यथार्थ जानने देखने और अभेद ज्ञानसे युक्त होनेके योग्य है और अन्य उपायसे नहीं ५४ ॥

मत्कर्मकृन्मत्परमोमद्भक्तः सङ्गवर्जितः ।
निर्वैरस्सर्वभूतेषुयस्समामेतिपाण्डव ! ५५ ॥

इति श्रीमन्महाभारतेशतसंहस्त्रसंहितायांवैयासिक्यांभीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सुब्रह्मविद्यायांयोगशास्त्रेश्रीकृष्णार्जुनसंवादेविश्वरूपदर्शनोनामैकादशोऽध्यायःसमाप्तः॥ ११ ॥

हे पाण्डव अर्जुन ! जो मेरे हेतु कर्म करता है और मुझे परम उत्कृष्ट जानता है और रागादि से रहित होकर मेरी भक्ति करता है और सम्पूर्णभूतों से निर्वैर रहता है वही मुझ को प्राप्त होता है ५५ ॥

विश्वरूपदर्शननामक ग्यारहवां अध्याय समाप्तहुआ ॥ ११ ॥

अर्जुनउवाच ॥

एवंसततयुक्तायेभक्तास्त्वांपर्युपासते ।
येचाप्यक्षरमव्यक्तं तेषांकेयोगवित्तमाः १ ॥

श्रीभगवानुवाच ॥

मय्यावेश्यमनोयेमां नित्ययुक्ताउपासते ।
श्रद्धयापरयोपेतास्तेमेयुक्ततमामताः २ ॥

अर्जुन प्रश्न करते हैं हे श्रीकृष्ण ! जो लोग सर्वदा भक्तिमार्ग के अनुसार तुम्हारी उपासना करते हैं जो अविनाशी निर्गुण परब्रह्मको ज्ञानमार्ग से उपासना करते हैं इन दोनों में से श्रेष्ठ कौन है १ ॥

भगवान् उत्तर देते हैं जो लोग मुझ में मन स्थिर करके उत्तम श्रद्धासे युक्तहो सर्वदा एकाग्रचित्त रह मेरी उपासना करते हैं वे मेरे मतके अनुसार अतिउत्तम हैं २ ॥

येत्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तम्पर्युपासते ।
सर्वत्रगमचिन्त्यञ्चकूटस्थमचलन्ध्रुवम् ३ ॥
सन्नियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्रसमबुद्धयः ।
तेप्राप्नुवन्तिमामेव सर्वभूतहितेरताः ४ ॥
क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम् ।
अव्यक्ताहिगतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते ५ ॥

जो लोग अविनाशी और लक्षण प्रमाणसे जानने के योग्य और इन्द्रियोंसे अविषय और अचिन्त्य और मायारूप प्रपञ्च में अधिष्ठान रूपसे स्थित और स्थिर ऐसे ब्रह्मकी उपासना करते हैं ३ ॥

इन्द्रियग्रामको रोककर सर्वत्र समबुद्धि रखकर सर्वत्र भूतों का हित आचरण करते भये वे मुझ में प्राप्तहोते हैं ४ ॥

परन्तु ज्ञानमार्गवालों को अव्यक्त रूप परब्रह्म में चित्त लगाने से क्लेश होता है क्योंकि देहधारियों को निराकारको जानना यही दुःख है ५ ॥

येतुसर्वाणिकर्माणि मयिसंन्यस्यमत्पराः ।
अनन्येनैवयोगेन मांध्यायन्तउपासते ६ ॥
तेषामहंसमुद्धर्त्ता मृत्युसंसारसागरात् ।
भवामिनचिरात्पार्थ ! मय्यावेशितचेतसाम् ७ ॥
मय्येवमनआधत्स्व मयिबुद्धिंनिवेशय ।
निवसिष्यसिमय्येव अतऊर्ध्वंनसंशयः ८ ॥

जो लोग मेरे हेतु सम्पूर्णकर्मों को त्याग मुझी को परमपुरुषार्थ जान अद्वैतयोगसे मुझे ध्यान करते हुये उपासना करते हैं ६ ॥

हे पार्थ, अर्जुन ! उनको मृत्युरूपी संसार से बहुत शीघ्र मैं पारकरताहूं यदि वे लोग मुझी में चित्त को एकाग्रता से स्थिर करैं ७ ॥

हे अर्जुन ! सङ्कल्प विकल्प के आत्मक मन और व्यवसायात्मक बुद्धिको मुझ में स्थिरकरो तो मुझमें प्राप्त होगे इसमें कुछ संशय नहीं ८ ॥

अथचित्तंसमाधातुं नशक्नोषिमयिस्थिरम् ।
अभ्यासयोगेनततो मामिच्छाप्तुंधनञ्जय ।९॥
अभ्यासेप्यसमर्थोसि मत्कर्मपरमोभव ।
मदर्थमपिकर्माणि कुर्वन्सिद्धिमवाप्स्यसि १० ॥
अथैतदप्यशक्तोसि कर्तुमद्योगमाश्रितः ।
सर्वकर्मफलत्यागं ततःकुरुयतात्मवान् ११ ॥

हे धनञ्जय ! यदि मुझमें स्थिरचित्त निवेश न करसको तो अभ्यास योग से मुझ में प्राप्त होने के लिये प्रयत्न करो ९ ॥

यदि अभ्यास न करसको तो व्रत आदिको मेरी प्रीति के हेतु आचरण करो क्योंकि मेरी प्रीति के लिये कर्म्म के आचरण से मोक्षको प्राप्त होगे १० ॥

यदि मेरी अनुग्रह के हेतु कर्म्मभी न करसको तो सम्पूर्ण कर्म्म ईश्वर अर्पण करके फल त्याग

श्रेयोहिज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाद्ध्यानंविशिष्यते ।
ध्यानात्कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छान्तिरनन्तरम् १२
अद्वेष्टासर्वभूतानां मैत्रःकरुणएवच ।
निर्ममोनिरहङ्कारः समदुःखसुखःक्षमी १३ ॥

करो और नियमित चित्तहो मेरीही शरणआवो तो सिद्धिको प्राप्तहोगे ११ ॥

अभ्यासयोगसे ज्ञान मङ्गलदायकहै और ज्ञान से ध्यान श्रेष्ठ और ध्यान से कर्म्मफल त्याग करना अतिउत्तम इसके अनन्तर संसार से शान्ति को प्राप्तहोता है १२ ॥

सम्पूर्ण भूतों से द्वेषरहितहो मित्रता रक्खे और दीनोंपर दया और ममता और अहङ्कारसे रहितहो सुख दुःखको समान जाने और क्षमा-शीलहो १३ ॥

सन्तुष्टःसततंयोगी यतात्माद्दढनिश्चयः।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्योमद्भक्तःसमेप्रियः १४ ॥
यस्मान्नोद्विजतेलोको लोकान्नोद्विजतेचयः।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तोयःसचमेप्रियः १५ ॥
अनपेक्षःशुचिर्दक्ष उदासीनोगतव्यथः।
सर्वारम्भपरित्यागी योमद्भक्तःसमेप्रियः १६ ॥

सर्वदा सन्तोषयुक्त और योगयुक्त रहै और चित्त एकाग्र दृढ़ निश्चयवालाहो बुद्धि और मन मुझ में अर्पण करै ऐसा मेरा भक्त मुझ को प्रिय है १४ ॥

जिस से जनलोग भयको नहीं प्राप्तहोते और न जनों से वह भयको प्राप्तहोता हर्ष असहन भय और चित्तकी व्याकुलता से जो परे है वही मेरा भक्त है १५ ॥

अपेक्षारहित पवित्र समर्थ उदासीन और पीड़ा

योनहृष्यतिनद्वेष्टि नशोचतिनकाङ्क्षति ।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यःसमेप्रियः १७ ॥
समःशत्रौचमित्रेच तथामानापमानयोः ।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समःसङ्गविवर्जितः १८ ॥
तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी सन्तुष्टोयेनकेनचित् ।
अनिकेतःस्थिरमतिर्भक्तिमान्मेप्रियोनरः १९ ॥

रहितहो सम्पूर्ण प्रयत्नको त्याग करै सो मेरा अत्यन्त प्रिय है १६ ॥

जो जन हर्षको नहीं प्राप्तहोता और न किसी से द्वेष रखता न कुछ शोच करता न किसी की आशा रखता अशुभ शुभफल को त्याग करता भया मेरी भक्ति करताहै सो मेरा प्रिय है १७ ॥

शत्रु मित्र और मान अपमानको समान जान और शीत उष्ण और सुख दुःख में समता रख असङ्ग रहै १८ ॥

निन्दा और स्तुतिको समान जान प्रयोजनके

येतुधर्म्मामृतमिदं यथोक्तंपर्युपासते ।
श्रद्दधानामत्परमा भक्तास्तेतीवमेप्रियाः २० ॥
इति श्रीमन्महाभारतेशतसहस्रसंहितायांवैयासि
क्यांभीष्मपर्वणिश्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सुब्र
ह्मविद्यायांयोगशास्त्रे श्रीकृष्णार्ज्जुनसंवादे
भक्तियोगोनामद्वादशोऽध्यायःसमाप्तः१२

अनुसार वर्ताकरै और जो प्राप्तहो उससे सन्तुष्ट हो एकत्र निवासी न रहै और बुद्धि स्थिर रक्खे ऐसा भक्तिमान् पुरुष मुझे बहुत प्रिय है १९ ॥

हे अर्जुन ! यह धर्म्मरूप मोक्षसाधन उपाय जो अमृत तुल्यहै जैसा मैंने कहा उसीप्रकार से श्रद्धा-पूर्वक मुझको परमपुरुपार्थ जानके जो भक्ति से उपासना करते हैं वे मुझे अत्यन्त प्रिय हैं २० ॥

भक्तियोगनिरूपणनामक बारहवां अध्याय
समाप्त हुआ ॥ १२ ॥

॥ अर्जुनउवाच ॥

प्रकृतिंपुरुषंचैव क्षेत्रंक्षेत्रज्ञमेवच ।
एतद्वेदितुमिच्छामि ज्ञानंज्ञेयञ्चकेशव ॥ १ ॥

श्रीभगवानुवाच ॥

इदंशरीरंकौन्तेय ! क्षेत्रमित्यभिधीयते ।
एतद्योवेत्तितंप्राहुः क्षेत्रज्ञमितितद्विदः २ ॥

अर्जुन प्रश्न करते हैं कि हे केशव ! प्रकृति पुरुष क्षेत्र क्षेत्रज्ञ ज्ञान और ज्ञेय इन्हें मैं जानना चाहताहूं सो कृपा करके कहो १ ॥

भगवान् उत्तर देते हैं हे अर्जुन ! इस भोगस्थान शरीरको क्षेत्र कहते हैं इसको जो यथार्थ करके जानता है उसको विवेकज्ञानवाले पुरुष क्षेत्रज्ञ कहते हैं २ ॥

क्षेत्रज्ञंचापिमांविद्धिसर्वक्षेत्रेषुभारत ।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानंयत्तज्ज्ञानम्मतम्मम ३ ॥
तत्क्षेत्रंयच्चयादृक्चयद्विकारियतश्चयत् ।
सचयोयत्प्रभावश्च तत्समासेनमेशृणु ४ ॥

हे भारत ! सम्पूर्ण क्षेत्रोंमें अनुगत क्षेत्रज्ञ मुझी को जानो क्षेत्र और क्षेत्रज्ञका ज्ञान मेराही ज्ञानहै जो मोक्षका हेतु है ३ ॥

वह जो स्वरूप से जड़ और इच्छादि जिसका धर्म्म है और विकाररूप इन्द्रियोंसे युक्त और प्रकृति और पुरुष के संयोगसे होता है सो क्षेत्रहै और जो अचिन्त्य ऐश्वर्य्य आदि प्रभावोंसे परिपूर्ण है सो क्षेत्रज्ञ है यह संक्षेप में मुझसे सुनो ४ ॥

ऋषिभिर्बहुधागीतंछन्दोभिर्विविधैःपृथक् ।
ब्रह्मसूत्रपदैश्चैव हेतुमद्भिर्विनिश्चितैः ५ ॥
महाभूतान्यहङ्कारोबुद्धिरव्यक्तमेवच ।
इन्द्रियाणिदशैकञ्चपञ्चचेन्द्रियगोचराः ६ ॥

वशिष्ठादि महाऋषियोंने योगशास्त्रों में और ध्यानधारण विषयरूप वैराग्यादिरूप में कहाहै और अनेकप्रकारके नित्य नैमित्तिक कामविषयक वेदवाक्योंमें यजनीय नाना देवतादिरूपसे प्रतिपादनकियाहै और ब्रह्मसूत्रअद्वैत प्रतिपादकवेदान्त वाक्योंसे भी निरूपण कियाहै जो वाक्ययुक्त और पूर्वपक्ष सिद्धान्तोंसे निर्द्धारण कियागयाहै ५ ॥

पृथ्वी आदि पंचमहाभूत अहंकार बुद्धि और प्रकृति मिलकर आठ और उसमें ज्ञानइन्द्रिय और कर्म्मइन्द्रिय और मन मिलकर ग्यारह और पंच ज्ञानइन्द्रियों के विषय आदि सब मिलकर चौबीस तत्त्व हैं ६ ॥

इच्छाद्वेषःसुखंदुःखंसङ्घातश्चेतनाधृतिः ।
एतत्क्षेत्रंसमासेनसविकारमुदाहृतम् ७ ॥
अमानित्वमदम्भित्वमहिंसाक्षान्तिरार्जवम् ।
आचार्योपासनंशौचंस्थैर्यमात्मविनिग्रहः ८ ॥

इच्छा द्वेष सुखदुःख शरीर ज्ञानात्मिका मनो-वृत्ति धैर्य्य इन शक्तिकेसमूहोंको विकारसहित संक्षेप से क्षेत्र कहाहै ७ ॥

अपनागुण बखान न करै और कपट त्यागकरै और दूसरे को पीड़ा न दे और क्षमाकरै और सीधी मार्ग से चलै और गुरुकी सेवा कियाकरै और बाह्य शौच और रागादिसे रहितहो आन्त-रिकशौच से पवित्ररहै और स्थिर हो मनको रोकेरहै ८ ॥

इन्द्रियार्थेषुवैराग्यमनहङ्कारमेवच ।
जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम् ९ ॥
असक्तिरनभिष्वङ्गःपुत्रदारगृहादिषु ।
नित्यञ्चसमचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु १० ॥
मयिचानन्ययोगेनभक्तिरव्यभिचारिणी ।
विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि ११ ॥

इन्द्रियों के विषय रागादिसे विरक्तहो अहङ्कार त्यागदे जन्म मरण बुढ़ापा व्याधि और रागादि में दुःख और दोष देखतारहै ९ ॥

पुत्रदारा गृहादिमें प्रीति त्यागकरना और उनके दुःखसे अपने में दुःख न आरोपकरना और इष्ट और अनिष्ट वस्तुकी प्राप्तिसे सर्वदा समानरहै १० ॥

मेरी एकाग्रचित्तसे एकान्तमें भक्ति करै और जिस देशमें चित्त प्रसन्नहो उसका आश्रयणकरै और मूर्खोंकी सभामें प्रीति न करै ११ ॥

अध्यात्मज्ञाननित्यत्वन्तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम् ।
एतज्ज्ञानमितिप्रोक्तमज्ञानंयदतोऽन्यथा १२ ॥
ज्ञेयंयत्तत्प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वामृतमश्नुते ।
अनादिमत्परम्ब्रह्मनसत्तन्नासदुच्यते १३ ॥

अध्यात्म अर्थात् ईश्वरविषयक ज्ञानकी नित्य सेवनाकरै और तत्त्वज्ञान अर्थात् जीव ईश्वरका अभेद ज्ञान और उसके प्रयोजन मोक्ष के हेतु सर्वदा यत्न करता रहै अमानित्वादि से लेकर ये सब प्रकारके ज्ञानसाधन जो कहे हैं वही ज्ञान कहलाताहै इससे व्यतिरेकजो है सो अज्ञानहै १२॥

ज्ञेयवस्तुको कहते हैं कि जिसके जानने से पुरुष मोक्षको प्राप्तहोता है और वह उत्पत्ति और नाश से रहित और निरतिशय परब्रह्म है और वह प्रमाणों से निषेध और विधिका विषय नहीं१३॥

सर्वतःपाणिपादन्तत्सर्वतोक्षिशिरोमुखम् ।
सर्वतःश्रुतिमल्लोकेसर्वमावृत्यतिष्ठति १४ ॥
सर्वेन्द्रियगुणाभासंसर्वेन्द्रियविवर्जितम् ।
असक्तंसर्वभृच्चैवनिर्गुणंगुणभोक्तृच १५ ॥

वह परब्रह्म हाथ पांव नेत्र और मुखसे सर्वत्र व्याप्त है और श्रोत्र इन्द्रियों से सर्वत्र युक्तहोकर जगत को घेरेहुये स्थितहै १४ ॥

सम्पूर्ण चक्षुआदि इन्द्रियों से रूपादि गुणोंका प्रकाशक है और आप सब इन्द्रियों से रहित असंग और सम्पूर्ण जगत् का आधार है और सत्त्वादिगुणोंसेरहित और उनका भोक्ता और पालक है १५ ॥

बहिरन्तश्चभूतानामचरञ्चरमेवच ।
सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयंदूरस्थञ्चान्तिकेचतत् १६ ॥
अविभक्तञ्चभूतेषुविभक्तमिवचस्थितम् ।
भूतभर्तृचतज्ज्ञेयंग्रसिष्णुप्रभविष्णुच १७ ॥
ज्योतिषामपितज्ज्योतिस्तमसःपरमुच्यते ।
ज्ञानंज्ञेयंज्ञानगम्यंहृदिसर्वस्यधिष्ठितम् १८ ॥

वाह्य और अन्तर में सब भूतोंके वह परब्रह्म व्याप्त है और स्थावर और जंगमरूप वही है सूक्ष्म होने से वह परन्तु विवेकियों के निकट है १६ ॥

सम्पूर्ण भूतोंमें कारणरूपसे आप अभिन्न और कार्य्यरूपसे भिन्नकी नाईं स्थित हैं और चराचर भूतों का पालक और प्रलयकाल में नाशक और सृष्टिकाल में उत्पत्तिकर्त्ता भी आपही हैं १७ ॥

वह परब्रह्म प्रकाशकों कोभी प्रकाशक है और अज्ञानरूपी अंधकार से परे ज्ञान और ज्ञेय और

इति क्षेत्रं तथा ज्ञानं ज्ञेयं चोक्तं समासतः ।
मद्भक्त एतद्विज्ञाय मद्भावायोपपद्यते ॥ १९ ॥
प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि ।
विकारांश्च गुणांश्चैव विद्धि प्रकृतिसंभवान् ॥ २० ॥
कार्यकारणकर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिरुच्यते ।
पुरुषः सुखदुःखानां भोक्तृत्वे हेतुरुच्यते ॥ २१ ॥

ज्ञानसे प्राप्त करने के योग्य और संपूर्ण प्राणियोंके हृदयमें नियन्ता होकर स्थितभी वहीहै १८ ॥

इसप्रकार से संक्षेप में क्षेत्रज्ञान और ज्ञेय तत्त्व का लक्षण निरूपण किया मेरा भक्त इसके जाननेसे ब्रह्मभावको प्राप्तहोनेके योग्य होताहै १९

प्रकृति और पुरुष दोनों को अनादि जानो और प्रकृतिविकार देह इन्द्रियादि और सुख दुःख आदि गुणको प्रकृतिजन्य जानो २० ॥

देहादि कार्य्य और सुख दुःखादि साधन इ-

पुरुषःप्रकृतिस्थोहिभुंक्तेप्रकृतिजान् गुणान् ।
कारणंगुणसङ्गोस्यसदसद्योनिजन्मसु २२ ॥
उपद्रष्टानुमन्ताच भर्त्ताभोक्तामहेश्वरः ।
परमात्मेतिचाप्युक्तोदेहेस्मिन्पुरुषःपरः २३ ॥

न्द्रियों को तदाकार परिणाम होने में प्रकृति कारण कहलाती है वैसेही पुरुष सुख दुःख अनुभव करने में हेतु होता है २१ ॥

पुरुष प्रकृति के कार्य्य देहादि से युक्त होकर प्रकृतिजन्य सुख दुःखआदि गुणों का अनुभव करता है इसलिये पुरुष के उत्तम और अधम-योनि में जन्म लेनेका कारण शुभ अशुभकारी इन्द्रियों का संग है २२ ॥

पुरुष प्रकृति के निकट होकर साक्षी की नाई देखता और ग्रहण करता है और ईश्वररूप से भर्त्ता और भोक्ता भी है वही पुरुष इस देहमें परमात्मा भी कहलाता है २३ ॥

यएवंवेत्तिपुरुषंप्रकृतिंञ्चगुणैस्सह ।
सर्वथावर्त्तमानोऽपिनसभूयोऽभिजायते २४ ॥
ध्यानेनात्मनिपश्यन्तिकेचिदात्मानमात्मना ।
अन्येसांख्येनयोगेन कर्मयोगेनचापरे २५ ॥
अन्येत्वेवंनजानन्तश्श्रुत्वान्येभ्यउपासते ।
तेपिचातितरन्त्येव मृत्युं श्रुतिपरायणाः २६ ॥

जो पुरुष इसप्रकार से पुरुष को और सुख दुःख आदि गुणसहित प्रकृति को जानता है वह यदि विधिनिषेध की मर्य्यादा त्यागकर भी चले तौभी जन्मादिसे रहित होकर मुक्त होताहै २४ ॥

कोईतौ ध्यानयुक्तहो अपने शरीरमें परमेश्वर को मनसे देखते हैं सांख्ययोगवाले प्रकृति और पुरुषके भेदसे जानते हैं और कर्मफलवाले अष्टांगयोग आदिसे ईश्वर को देखते हैं २५ ॥

और मन्दबुद्धिवाले पुरुष जो पूर्वोक्त प्रकारों

यावत्सञ्जायतेकिञ्चित्सत्त्वंस्थावरजङ्गमम् ।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात्तद्विद्धिभरतर्षभ । २७ ॥
समंसर्व्वेषुभूतेषुतिष्ठन्तम्परमेश्वरम् ।
विनश्यत्स्वविनश्यन्तंयःपश्यतिसपश्यति २८ ॥

से नहीं जानसके वे गुरु से ईश्वर का स्वरूप सुनकर उसपर निश्चय करनेसे संसाररूप मृत्यु से तर जाते हैं २६ ॥

हे अर्जुन ! जो कुछ चराचरआत्मक सत्त्व उत्पन्नहोताहै सो सब प्रकृति और पुरुषके संयोग आरोप करने से होता है सो जानो २७ ॥

जो पुरुष चराचरआत्मक भूतों में परमेश्वर को समान व्याप्त जानताहै और भूतोंके नाशहोने से ईश्वर को नाशरहित जानताहै सो प्राप्तियोग्य वस्तुको भलीभांति से जानता है २८ ॥

समंपश्यन्हिसर्वत्र समवस्थितमीश्वरम् ।
नहिनस्त्यात्मनात्मानंततोयातिपरांगतिम् २९ ॥
प्रकृत्यैवचकर्म्माणिक्रियमाणानिसर्व्वशः ।
यःपश्यातितथात्मानमकर्त्तारंसपश्यति ३० ॥
यदाभूतपृथग्भावमेकस्थमनुपश्यति ।
ततएवचविस्तारंब्रह्मसम्पद्यतेतदा ३१ ॥

जो पुरुष परमेश्वर को सर्वत्र समानरूपसे स्थित देखताहुआ अपने देहादि के साथ उसे नष्ट नहीं देखता सो इसके अनन्तर मोक्षगति को प्राप्त होताहै २९ ॥

जो पुरुष सबप्रकार से शुभअशुभकर्मों की कर्त्री प्रकृतिको और अकर्त्ता आत्माको मानता है वही परमगति को जानता है ३० ॥

जब सम्पूर्ण भूतों में पृथग्भेद देखते हुये प्रलय के समय एकप्रकृति में सबको स्थित देखताहै तिसके अनन्तर सृष्टिसमय में सम्पूर्ण

अनादित्वान्निर्गुणत्वात्परमात्मायमव्ययः ।
शरीरस्थोपिकौन्तेय ! नकरोतिनलिप्यते ३२ ॥
यथासर्वगतंसौक्ष्म्यादाकाशंनोपलिप्यते ।
सर्वत्रावस्थितोदेहेतथात्मानोपलिप्यते ३३ ॥
यथाप्रकाशयत्येकः कृत्स्नंलोकमिमंरविः ।
क्षेत्रंक्षेत्रीतथाकृत्स्नंप्रकाशयतिभारत ! ३४ ॥

भूतों का उसीसे विस्तार देखता है तब वह ब्रह्म-स्वरूप होजाता है ३१ ॥

हे अर्जुन ! परमेश्वर अनादि और निर्गुण होने से नाशरहित है यद्यपि सम्पूर्ण शरीरों में स्थितहै तथापि आप कुछ नहीं करता और न कर्मफलसे लिप्तहोताहै ३२ ॥

जैसे आकाश सर्वत्र व्याप्तहै परन्तु असंगहोनेसे किसी से लिप्त नहीं वैसेही यह आत्माभी सम्पूर्ण शरीर में व्याप्तहै परन्तु किसीसे लिप्त नहीं३३॥

हे अर्जुन ! जैसे सूर्य एकहै और सम्पूर्णलोक

क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोरेवमन्तरंज्ञानचक्षुषा ।
भूतप्रकृतिमोक्षञ्चयेविदुर्यान्तितेपरम् ३५ ॥
इति श्रीमन्महाभारतेशतसहस्रसंहितायां वैया
सिक्यांभीष्मपर्वणिश्रीमद्भगवद्गीतासूपनि
षत्सुब्रह्मविद्यायांयोगशास्त्रेश्रीकृष्णा
र्ज्जुनसंवादेक्षेत्रक्षेत्रज्ञनिर्देशोनाम
त्रयोदशोऽध्यायः १३ ॥

को प्रकाशकरताहै वैसेही सम्पूर्णक्षेत्रको क्षेत्री अर्थात् आत्मा प्रकाशकरताहै ३४ ॥

इसप्रकारसे क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के भेदको ज्ञान-दृष्टिसे जो देखता है और भूतोंकी प्रकृति और मोक्षका उपाय ध्यानादिक जो जानताहै सो माया से मुक्त होकर परमपदको प्राप्त होताहै ३५ ॥

क्षेत्र और क्षेत्रज्ञस्वरूपनिरूपण तेरहवां अध्याय समाप्तहुआ ॥ १३ ॥

श्रीभगवानुवाच ॥

परंभूयःप्रवक्ष्यामिज्ञानानांज्ञानमुत्तमम् ।
यज्ज्ञात्वामुनयस्सर्वेपरांसिद्धिमितोगताः १
इदंज्ञानमुपाश्रित्यममसाधर्म्यमागताः ।
सर्गेपिनोपजायन्तेप्रलयेनव्यथन्तिच २ ॥

भगवान् कहते हैं हे अर्जुन ! फिर मैं तुमसे कहताहूं कि तप कर्मादिसे ज्ञान उत्तम है और सम्पूर्ण ऋषिलोग जिसको जानने से इससंसार में मुक्तहोकर परममोक्ष सिद्धिको प्राप्तभयेहैं १ ॥

इसज्ञानको प्राप्तहोकर मेरे स्वरूपमें लयहोजाते हैं इसलिये फिर न सृष्टि में उत्पन्न होते हैं और न प्रलयमें नाशको प्राप्तहोते हैं २ ॥

ममयोनिर्महद्ब्रह्मतस्मिन्गर्भंदधाम्यहम् ।
संम्भवस्सर्वभूतानांततोभवतिभारत ! ३ ॥
सर्वयोनिषुकौन्तेय ! मूर्त्तयःसंभवन्ति याः ।
तासांब्रह्ममहद्योनिरहंबीजप्रदःपिता ४ ॥
सत्त्वंरजस्तमइतिगुणाःप्रकृतिसम्भवाः ।
निबध्नन्तिमहाबाहो ! देहेदेहिनमव्ययम् ५ ॥

यह कार्य्य ब्रह्म मेरी प्रकृतिहै सोई योनि है इसमें, मैं उत्पादकशक्ति को धारणकरताहूं उस से अर्ज्जुन ! सम्पूर्णभूतोंकी उत्पत्ति होवैहै ३॥
हे अर्ज्जुन ! सम्पूर्णयोनियों में जो मूर्त्तियां उत्पन्न होती हैं ब्रह्म उनकी महद्योनि है और मैं बीजदेनेवाला पिताहूं ४ ॥
हे महाबाहो ! सत्त्व रज और तम तीनोंगुण प्रकृतिसे उत्पन्न होतेहैं और देहमें इस अविनाशी जीवको बन्धन करते हैं ५ ॥

तत्रसत्त्वंनिर्मलत्वात्प्रकाशकमनामयम् ।
सुखसङ्गेनबध्नातिज्ञानसङ्गेनचानघ ! ६ ॥
रजोरागात्मकंविद्धितृष्णासङ्गसमुद्भवम् ।
तन्निबध्नातिकौन्तेय ! कर्मसङ्गेनदेहिनम् ७॥

हे अनघ अर्जुन ! इन तीनों गुणों मेंसे सत्त्व गुण निर्मल होने से प्रकाशक और निरुपद्रवहै इस लिये अपने कार्य सुख और ज्ञान दोनों के संगसे बन्धन करताहै अर्थात् क्षेत्र और क्षेत्रज्ञका संयोग प्रकाश करता है ६ ॥

हे अर्जुन ! रजोगुण को रागात्मक जानो वह तृष्णा और संगसे उत्पन्न है और इष्ट अनिष्ट कर्मों में आशा होने से क्षेत्रका बन्धन करता है ७ ॥

तमस्त्वज्ञानजंविद्धि मोहनंसर्वदेहिनाम् ।
प्रमादालस्यनिद्राभिस्तन्निबध्नातिभारत ! ८ ॥
सत्त्वंसुखेसञ्जयतिरजःकर्मणिभारत ! ।
ज्ञानमावृत्यतुतमःप्रमादेसञ्जयत्युत ९ ॥
रजस्तमश्चाभिभूयसत्त्वंभवतिभारत ! ।
रजस्सत्त्वन्तमश्चैव तमः सत्त्वंरजस्तथा १० ॥

हे अर्जुन ! तम अज्ञानसे उत्पन्न है और सम्पूर्ण प्राणियों को भ्रांति ज्ञान उत्पन्न करताहै प्रमाद आलस्य और निद्रा से क्षेत्रज्ञको बांधताहै ८ ॥

सत्त्वगुण देहीको सुख प्राप्त करताहै और रजोगुण कर्म में प्रवृत्त करता है और तमोगुण ज्ञान को घेरकर प्रमादादि से युक्त करताहै ९ ॥

हे भारत ! रज तम दोनों तिरस्कार करके सत्त्व गुण देहीको सुखादिसे युक्त करता है और रजो-

सर्व्वद्वारेषुदेहेऽस्मिन्प्रकाशउपजायते।
ज्ञानंयदातदाविद्याद्विवृद्धंसत्त्वमित्युत ११॥
लोभःप्रवृत्तिरारम्भःकर्म्मणामशमःस्पृहा।
रजस्येतानिजायन्तेविवृद्धेभरतर्षभ। १२॥

गुण सत्त्व और तम इन दोनों को दबाकर देही को रागादि में युक्त करता है वैसेही तम सत्त्व और रज दोनोंको दूर करके प्राणियोंको प्रमादादि में प्रवृत्त करता है १०॥

श्रोत्रादि सब द्वारों में जब शब्दादि का ज्ञान प्रकाश होताहै तब उसमें सत्त्वकी वृद्धि और सुख आदि का अनुभव जानो ११॥

लोभ प्रवृत्ति नानाकर्मों के आरम्भ अनेक संकल्प विकल्प का होना और इच्छादि रजोगुण की वृद्धि से उत्पन्न होते हैं १२॥

अप्रकाशोऽप्रवृत्तिश्च प्रमादोमोहएवच ।
तमस्येतानिजायन्ते विवृद्धेकुरुनन्दन ! १३ ॥
यदासत्त्वेप्रवृद्धेतुप्रलयंयातिदेहभृत् ।
तदोत्तमविदां लोकानमलान्प्रतिपद्यते १४ ॥
रजसिप्रलयंगत्वा कर्मसङ्गिषुजायते ।
तथाप्रलीनस्तमसिमूढयोनिषुजायते १५ ॥

हे अर्जुन ! विवेकनाश और अनुद्योग कर्त्तव्य अर्थ का त्याग और मोहादि ये तमोगुणकी वृद्धि से उत्पन्न होते हैं १३ ॥

जब सत्त्वगुण अधिक होताहै तब देही प्रलय अर्थात् मृत्यु होने पर उत्तम ज्ञानियों के निर्मल लोक में प्राप्त होताहै १४ ॥

रजोगुणकी अधिकतामें मृत मनुष्ययोनि में प्राप्त होवाहै वैसेही तमोगुणकी वृद्धि में मृत मूढ़ अर्थात पशुयोनिको प्राप्त होता है १५ ॥

कर्मणःसुकृतस्याहुः सात्त्विकंनिर्मलंफलम् ।
रजसस्तुफलं दुःखमज्ञानन्तमसःफलम् १६ ॥
सत्त्वात्सञ्जायतेज्ञानं रजसोलोभएवच ।
प्रमादमोहौतमसोभवतोऽज्ञानमेवच १७ ॥
ऊर्ध्वंगच्छन्तिसत्त्वस्थामध्येतिष्ठन्तिराजसाः ।
जघन्यगुणवृत्तिस्थाअधोगच्छन्तितामसाः १८ ॥

पुण्यकर्म्मका सत्त्वप्रधान निर्मलज्ञान फल और रजोगुण का फल दुःख और तमोगुण का फल अज्ञान है १६ ॥

सत्त्वगुण से ज्ञान उत्पन्न होताहै और रजोगुण से लोभ और तमसे प्रमाद मोह और अज्ञान तीनों उत्पन्न होते हैं १७ ॥

सात्त्विकगुणवाले हिरण्यगर्भलोक को प्राप्त होते हैं और रजोगुण वाले दुःख भोगते हुये मृत्यु लोक में रहते हैं और तमोगुणवाले निकृष्टयोनि में प्राप्त होके नरक में जाते हैं १८ ॥

नान्यंगुणेभ्यःकर्त्तारं यदा द्रष्टानुपश्यति ।
गुणेभ्यश्चपरंवेत्ति मद्भावंसोऽधिगच्छति १९ ॥
गुणानेतानतीत्यत्रीन्देहीदेहसमुद्भवान् ।
जन्ममृत्युजरादुःखैर्विमुक्तोमृतमश्नुते २० ॥
अर्जुनउवाच ॥
कैर्लिङ्गैस्त्रीन्गुणानेतानतीतोभवतिप्रभो ! ।
किमाचारःकथंचैतांस्त्रीन्गुणानतिवर्तते २१ ॥

जब विवेकी पुरुष सत्त्वादि गुणों से कर्त्ता को अतिरिक्त नहीं देखता तो गुणहीको कर्त्ता जानकर उनसे पर साक्षी को जानताहै तब वह मेरे स्वरूप को प्राप्त होता है १९ ॥

देही इन देह उत्पन्न सत्त्वादि तीनों गुणों को अतिक्रमण करके जन्म मरण और वृद्धअवस्थादि दुःखों से मुक्त हो परमानन्द को प्राप्त होताहै २० ॥

अर्जुन प्रश्न करते हैं कि हे प्रभो श्रीकृष्ण !

श्रीभगवानुवाच ॥

प्रकाशञ्चप्रवृत्तिञ्च मोहमेवचपाण्डव ! ।
नद्वेष्टिसम्प्रवृत्तानि न निवृत्तानिकांक्षति २२ ॥
उदासीनवदासीनो गुणैर्योनविचाल्यते ।
गुणावर्तन्तइत्येवंयोऽवतिष्ठतिनेङ्गते २३ ॥

किन किन चिह्नों से देही इन तीनों गुणों से अति-क्रमण हुआ मालूम होता है और किस आचार से युक्त होकर इनगुणों के पर हो रहताहै २१ ॥

भगवान् उत्तर देते हैं कि हे पाण्डव ! सत्त्व-गुण का कार्य प्रकाश और रजका कार्य प्रवृत्ति और तमका कार्य मोह तीनों स्वभाव से प्रवृत्त हैं उनमें जो दुःख बुद्धिसे द्वेष न रक्खे और निवृत्त में इच्छा करे सो गुणातीत है २२ ॥

जो पुरुष उदासीन की नाईं गुणों से अकम्पाय-मान होकर स्थिर रहताहै और उनको स्वभावसे

समदुःखसुखःस्वस्थःसमलोष्टाश्मकाञ्चनः ।
तुल्यप्रियाप्रियोधीरस्तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः२४॥
मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्योमित्रारिपक्षयोः ।
सर्वारम्भपरित्यागी गुणातीतःसउच्यते २५ ॥

वर्तमान जानकर स्थिर होताहै सो गुणातीत कहलाता है २३ ॥

जो पुरुष सुख और दुःख को समान जानताहै और स्वस्थमन रहता है और ढेला पत्थर और सोने को समान देखताहै और प्रिय और अप्रिय दोनों उसके निकट समान हैं और निन्दा और स्तुति को तुल्य गिनताहै सो गुणातीतहै २४ ॥

मान अपमान जिसके समान (तुल्य) हैं और मित्र और शत्रु दोनों पक्ष को समान जानता है और सम्पूर्ण उद्योगको त्याग करताहै सो भी गुणातीत कहलाता है २५ ॥

मांचयोऽव्यभिचारेण भक्तियोगेनसेवते ।
सगुणान्समतीत्यैतान्ब्रह्मभूयायकल्पते २६ ॥
ब्रह्मणोहिप्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्यच ।
शाश्वतस्यचधर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्यच २७॥
इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सुप्रकृतिगुणत्रय-
विभागयोगोनामचतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

जो पुरुष मुझको एकाग्र भक्तियों से सेवन करताहै सो इन गुणोंसे पार होके मोक्षको प्राप्त होने के योग्य होताहै २६ ॥

मैं मोक्षरूप अविनाशी सनातन अनादि धर्म रूप और निरतिशय सुखस्वरूप परब्रह्म की प्रतिमा हूं जैसे प्रकाशकापुञ्ज सूर्य है २७ ॥

प्रकृतिगुणादिभेदनिरूपण चौदहवां
अध्याय समाप्त हुआ १४ ॥

श्रीभगवानुवाच ॥

ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थम्प्राहुरव्ययम् ।
छन्दांसियस्यपर्णानियस्तंवेदसवेदवित् १ ॥
अधश्चोर्ध्वंप्रसृतास्तस्यशाखा
गुणप्रवृद्धाविषयप्रवालाः ।
अधश्चमूलान्यनुसन्ततानि
कर्म्मानुबन्धीनिमनुष्यलोके २ ॥

भगवान् कहते हैं यह संसाररूपी पीपरकावृक्ष जिसकी जड़ ऊर्ध्व कहे उत्पत्ति और नाशरहित ऐसा पुरुषोत्तमहै और अधः हिरण्यगर्भादि जिस की शाखा हैं प्रवाहरूप करके अनादि है- और उसके पत्ते वेद प्रतिपाद्यकर्मफल आदि हैं इस प्रकारसे जो इस संसाररूपी-पीपर को जानताहै सो वेदार्थ जाननेवाला है १ ॥

दुष्कृति लोग पशु आदि योनि में प्राप्त होके

नरूपमस्येहतथोपलभ्यते
नान्तोनचादिर्नचसम्प्रतिष्ठा ।
अश्वत्थमेनंसुविरूढमूल
मसङ्गशस्त्रेणदृढेनछित्वा ३ ॥

शाखादिरूप से नीचे व्याप्त हैं और सुकृती लोग देवादियोनि में प्राप्त होके शाखादिरूप से ऊपर फैले हैं और वे शाखा सत्त्वादिगुणों से वृद्धि को प्राप्तभईहैं उसके अंकुर रूपादि विषयहैं इस मनुष्य लोक में कर्म्म अनुसार इसकी जड़ नीचे ऊपर व्याप्त है २ ॥

इस जगत् में संसाररूपी पीपर का ऊपर मूल नीचे शाखादिरूप नहीं देख पड़ता वैसेही अन्त आदि और स्थिति भी नहीं जान पड़ती इस प्रबल मूल पीपरको असङ्गरूप शस्त्र से छेदके ३ ॥

ततःपदंतत्परिमार्गितव्यं
यस्मिन्गतानानिवर्तन्तिभूयः।
तमेवचाद्यंपुरुषम्प्रपद्ये
यतःप्रवृत्तिःप्रसृतापुराणी॥४॥
निर्मानमोहाजितसङ्गदोषा
अध्यात्मनित्याविनिवृत्तकामाः।
द्वन्द्वैर्विमुक्ताःसुखदुःखसंज्ञै
र्गच्छन्त्यमूढाःपदमव्ययन्तत्॥५॥

तिसके अनन्तर उस अनादिपुरुषके मैं शरणागतहूं इस विधि उस प्राप्य परमवस्तु की प्राप्ति के लिये उद्योग करें और वह ऐसी वस्तु रूपर है जिसमें लय होकर फिर जन्मको नहीं प्राप्त होता क्योंकि इस अनादिसंसारकी प्रवृत्ति अनेकप्रकार से फैली है॥४॥

अभिमान और मोह से रहित रागादि दोष के

नतद्भासयतेसूर्य्योनशशाङ्कोनपावकः।
यद्गत्वाननिवर्तन्ते तद्धामपरमम्मम ६॥
ममैवांशोजीवलोके जीवभूतस्सनातनः।
मनःषष्ठानीन्द्रियाणिप्रकृतिस्थानिकर्षति ७॥

जीतनेवाले सर्वदा आत्मज्ञान में तत्पर कामादिसे निवृत्त सुख दुःख शीतोष्ण दोनों को समान जानेवाले विवेकीपुरुष अविनाशी मोक्षपद को प्राप्त होते हैं ५ ॥

सूर्य चन्द्र और अग्नि जिसको नहीं प्रकाश करसक्ते जिसको योगी लोग प्राप्तहोके फिर नहीं फिरते सो उत्कृष्टधाम मेरा है ६ ॥

यह अनादिजीव स्वरूपमें स्थित मेराही अंशहै तथापि संसार में भोगके हेतु मनआदि छः इन्द्रियां प्रकृति में स्थित रहकर जीवको अपने अपने विषयकी ओर आकर्षण करती हैं ७ ॥

शरीरंयदवाप्नोति यच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः ।
गृहीत्वैतानिसंयाति वायुर्गन्धानिवाशयात् ८ ॥
श्रोत्रञ्चक्षुःस्पर्शनञ्च रसनंघ्राणमेवच ।
अधिष्ठायमनश्चायं विषयानुपसेवते ९ ॥
उत्क्रामन्तंस्थितंवापि भुञ्जानंवागुणान्वितम् ।
विमूढानानुपश्यन्तिपश्यन्तिज्ञानचक्षुषः १० ॥

देही एक देह को त्यागकर जब दूसरे में प्राप्त होताहै तो इन्द्रियों को अपने साथ लेजाताहै जैसे वायु फूल से गंध दूसरी जगह लेजाताहै ८ ॥

कान,आंख,त्वक्,जिह्वा, नाक और मन छओं इन्द्रियोंको आश्रयणकरके यह जीवरूपादि विषयों का अनुभव करताहै ९ ॥

मूर्ख लोग जीवको एक शरीर के त्याग और दूसरेके आश्रयणकरनेके विषयों को अनुभव करने

यतन्तोयोगिनश्चैनंपश्यन्त्यात्मन्यवस्थितम् ।
यतन्तोऽप्यकृतात्मानोनैनम्पश्यन्त्यचेतसः ११॥
यदादित्यगतंतेजोजगद्भासयतेखिलम् ।
यच्चन्द्रमसियच्चाग्नौतत्तेजोविद्धिमामकम् १२ ॥

और इन्द्रियों के साथ रहने को नहीं देखसक्ते परन्तु विवेकीलोग उसे ज्ञानचक्षु से देखते हैं १० ॥

योगीलोग योगाभ्यास से प्रयत्न करतेभये देह में स्थित आत्मा को देखतेहैं और अविवेकीलोग प्रयत्न करतेहुयेभी आत्माको नहीं देखसक्ते क्योंकि वे विवेकज्ञान से रहित हैं ११ ॥

जो तेज सूर्य्य चन्द्र अग्निमें स्थित होकर संपूर्ण जगत् का प्रकाश करता है वह तेज मेरा जानो १२ ॥

गामाविश्यचभूतानि धारयाम्यहमोजसा ।
पुष्णामिचौषधीःसर्वाः सोमोभूत्वारसात्मकः १३
अहंवैश्वानरोभूत्वा प्राणिनांदेहमाश्रितः ।
प्राणापानसमायुक्तःपचाम्यन्नंचतुर्विधम् १४ ॥

मैं पृथ्वी में स्थित होके अपने पराक्रमसे चराचरआत्मकभूतों को धारण करताहूं और रस स्वरूप चन्द्र होके सम्पूर्ण औषधिलताओं को पोषण करताहूं १३ ॥

मैं जठराग्नि होकर प्राणियोंके देहमें स्थितहो प्राण अपान दोनों वायुओं से मिलकर भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, चोष्य चारोंप्रकार के अन्नों को पाचन करताहूं १४ ॥

सर्वस्य चाहं हृदि संनिविष्टो
मत्तस्स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च ।
वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो
वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम् १५ ॥
द्वाविमौपुरुषौलोकेक्षरश्चाक्षरएवच ।
क्षरः सर्वाणिभूतानि कूटस्थोऽक्षरउच्यते १६ ॥

सम्पूर्ण प्राणियों के हृदय में अन्तर्यामीरूप से स्थित होकर व्यतीतवस्तुको स्मरण और पदार्थ ज्ञान और उनका विस्मरण मैंही करता हूं और चारोंवेदों से उनके देवतारूप में उपास्य हूं और वेदान्तसम्प्रदाय का चलानेवाला और वेद जानने वालाभी मैंही हूं १५ ॥

इस जगत् में यह दोपुरुष क्षर और अक्षर कहलातेहैं उन दोनों में से सम्पूर्णभूत क्षरहैं और माया के आश्रित परमेश्वर अक्षर हैं १६ ॥

उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः ।
योलोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्ययईश्वरः १७ ॥
यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपिचोत्तमः ।
अतोऽस्मिलोकेवेदेचप्रथितः पुरुषोत्तमः १८ ॥
योमामेवमसम्मूढो जानातिपुरुषोत्तमम् ।
ससर्वविद्भजतिमांसर्वभावेनभारत १९ ॥

इन दोनों में से भिन्न पुरुषोत्तम परमात्मा कहलाता है जो तीनों लोकमें व्याप्त होकर अविनाशी ईश्वररूप से पालन करता है १७ ॥

जिस कारण से नाशरहित और अक्षर से श्रेष्ठ हूं उसी कारणसे लोक और वेदमें भी पुरुषोत्तम कहलाता हूं १८ ॥

जो मोहरहित होकर मुझको इसप्रकार से पुरुषोत्तम जानता है सो सर्वज्ञ है वही अनन्यहो मुझको भजन करताहै १९ ॥

इतिगुह्यतमंशास्त्रमिदमुक्तंमयानघ ।
एतद्बुद्ध्वाबुद्धिमान्स्यात्कृतकृत्यश्चभारत २०॥
इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सुपुरुषोत्तमप्राप्ति
योगोनामपञ्चदशोऽध्यायः॥ १५ ॥

श्रीभगवानुवाच ॥
अभयंसत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः ।
दानंदमश्चयज्ञश्चस्वाध्यायस्तपआर्जवम् १ ॥

हे अर्जुन ! अतिगोपनीयशास्त्र जो मैंने नि-रूपण किया उसे इसप्रकार जानकर विवेकीपुरुप कृतकृत्य होते हैं २० ॥

पुराणपुरुषोत्तमनिरूपण पन्द्रहवां अध्याय
समाप्त हुआ १५ ॥

भगवान् कहते हैं सम्पूर्ण प्राणियों से निर्भय और सतोगुण प्रधान होकर ज्ञानअभ्यास में रत

अहिंसासत्यमक्रोधस्त्यागःशान्तिरपैशुनम् ।
दयाभूतेष्वलोलुप्त्वंमार्दवंह्रीरचापलम् २ ॥
तेजःक्षमाधृतिश्शौचमद्रोहोनातिमानिता ।
भवन्तिसम्पदंदैवीमभिजातस्यभारत ३ ॥

रहै यथाशक्ति ज्ञान इन्द्रियनिग्रह यज्ञ वेदाध्ययन तप और निष्कपट व्यवहार करै १ ॥

हिंसारहित सत्यवादी और क्रोधरहित हो रागादिको त्यागकरै और परनिन्दा न करै और भूतों पर दया रक्खै और किसी के नाश करने में प्रवृत्त न हो और कोमलस्वभाव रहै और निन्दित कर्म्म करनेसे लज्जितहो और स्थिरस्वभाव रक्खै २ ॥

हे भारत अर्जुन ! तेज क्षमा धैर्य्य पवित्रता निर्द्रोह और निरभिमानादि गुण दैवीसम्पत्ति में जो उत्पन्न पुरुष तिसमें होते हैं ३ ॥

दम्भोदर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेवच ।
अज्ञानञ्चाभिजातस्य पार्थसम्पदमासुरीम् ४ ॥
दैवीसम्पद्विमोक्षायनिबन्धायासुरीमता ।
माशुचः सम्पदंदैवीमभिजातोसिपाण्डव ५ ॥
द्वौभूतसर्गौलोकेस्मिन् दैवआसुरएवच ।
दैवोविस्तरशःप्रोक्तआसुरम्पार्थमेशृणु ६ ॥

हे पार्थ अर्जुन ! दम्भ दर्प अभिमान क्रोध कठोरभाषण और अज्ञानादि आसुरीसम्पत्ति से जो उत्पन्नपुरुष तिसमें होते हैं ४ ॥

हे पाण्डव ! दैवीसम्पद् मुक्ति के हेतुहै और आसुरीसम्पद् बन्धनका कारण, परन्तु तुम दैवी सम्पद्से उत्पन्न भयेहो इसलिये शोक न करो५ ॥

हे अर्जुन ! इस लोकमें भूतों की उत्पत्ति दैव और आसुरीभेद से दो प्रकार की कही है और

प्रवृत्तिंचनिवृत्तिंच जनानविदुरासुराः ।
नशौचंनापिचाचारो नसत्यन्तेषुविद्यते ७ ॥
असत्यमप्रतिष्ठन्तेजगदाहुरनीश्वरम् ।
अपरस्परसम्भूतंकिमन्यत्कामहेतुकम् ८ ॥

दैवउत्पत्ति का निरूपण बहुतप्रकार से करचुका अब आसुरी का निरूपण करताहूं सो सुनो ६ ॥
आसुरअंशवाले मनुष्य धर्म में प्रवृत्ति और अधर्म से निवृत्ति नहीं जानते इसलिये इन में शौच आचार और सत्यभी नहीं ७ ॥

आसुरी अंशवाले जगत् को असत्य निराश्रय और निरीश्वर कहते हैं और इसकी उत्पत्ति केवल स्त्री पुरुष संयोगही से जानते हैं इससे अतिरिक्त उत्पादक हेतु किसी को नहीं समझते ८ ॥

एतांदृष्टिमवष्टभ्यनष्टात्मानोऽल्पबुद्धयः ।
प्रभवन्त्युग्रकर्माणः क्षयायजगतोहिताः ९ ॥
काममाश्रित्यदुष्पूरन्दम्भमानमदान्विताः ।
मोहाद्गृहीत्वासद्ग्राहान्प्रवर्तन्तेऽशुचिव्रताः १०
चिन्तामपरिमेयांचप्रलयान्तामुपाश्रिताः ।
कामोपभोगपरमा एतावदितिनिश्चिताः ११ ॥

वे लोग इस नास्तिकदृष्टि का आश्रयण करके अपने निषिद्ध कर्माचरण से जगत् के नाशके हेतु आसक्त होते हैं क्योंकि वे अल्पबुद्धिवाले और अविवेकी हैं ९ ॥

वे अतृप्तकाम को आश्रयण करके दम्भ अभिमान और मद से युक्त होके अपनी अविवेकता से निन्दितकर्म का आचरण करके अपवित्रवृत्ति में प्रवृत्त होते हैं १० ॥

निरवधिचिन्ता कि जिसकी समाप्ति प्रलयही

आशापाशशतैर्बद्धाः कामक्रोधपरायणाः ।
ईहन्तेकामभोगार्थमन्यायेनार्थसंचयान् १२ ॥
इदमद्यमयालब्धमिदम्प्राप्स्येमनोरथम् ।
इदमस्तीदमपिमेभविष्यतिपुनर्द्धनम् १३ ॥

हैं उसके आश्रयण होकर केवल कामभोगही को परमपुरुषार्थ जान उसपर निश्चय करते हैं ११ ॥

अनेक प्रकार की आशाकी रस्सी में बद्ध और सर्वदा काम क्रोधमें अनुरक्त हैं और कामभोगके अर्थ अन्यायसे द्रव्यसंचयकी इच्छा करते हैं १२॥

वे लोग यह निश्चय करतेहैं कि आज मैंने यह धन पाया और मैं इस मनोरथ को पाऊंगा और यह वस्तु मेरीही है यह भी मेरीही है और आगे बहुतसा धन मुझको प्राप्त होगा १३ ॥

असौमयाहतश्शत्रुर्हनिष्येचापरानपि ।
ईश्वरोहमहंभोगी सिद्धोहम्बलवान्सुखी १४ ॥
आढ्योभिजनवानस्मिकोन्योस्तिसदृशोमया ।
यक्ष्येदास्यामिमोदिष्य इत्यज्ञानविमोहिताः १५ ॥
अनेकचित्तविभ्रान्तामोहजालसमावृताः ।
प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्तिनरकेऽशुचौ १६ ॥

वह मेरा शत्रु आज मैंने मारा और शेषको मारूंगा और ईश्वर मही हूं और भोगी सिद्ध वलवान् और सुखी भी मही हूं १४ ॥

वे लोग धन और कुल में अभिमानी होके इस जगत् में जानते हैं कि हमारी समान कोई नहीं और यज्ञदानकरके प्रतिष्ठित हो हमीं हर्षको प्राप्त होंगे इस विधि अज्ञान से मोहको प्राप्तहोतेहैं १५ ॥

अनेक प्रकारकी चित्तकी भ्रांतिसे मोहरूपीजाल में घिरके केवल कामभोगहीको पुरुषार्थ जानतेहुये रौरव आदि महाअपवित्र नरक में पड़तेहैं १६ ॥

आत्मसम्भाविताःस्तब्धाधनमानमदान्विताः ।
यजन्तेनामयज्ञैस्ते दम्भेनाविधिपूर्वकम् १७ ॥
अहङ्कारंबलंदर्पं कामंक्रोधंचसंश्रिताः ।
मामात्मपरदेहेषुप्रद्विषन्तोऽभ्यसूयकाः १८ ॥
तानहंद्विषतः क्रूरान्संसारेषुनराधमान् ।
क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेवयोनिषु १९ ॥

अपने मन से अपने को श्रेष्ठ जानकर अनम्र हो धनकी अधिकता से मद और अभिमान से युक्त हो केवल प्रतिष्ठा के हेतु वेदोक्तविधि त्यागकर कपट से यज्ञ करते हैं १७ ॥

अहंकार बल दर्प काम और क्रोधसे युक्त होकर मुझको सर्वव्यापी न जानके द्वेष करते हैं और विवेकियों की निन्दा करते हुये दम्भ से यज्ञ करते हैं १८ ॥

अधमक्रूरस्वभाव द्वेषयुक्त और अशुभकर्म्मकारी

आसुरींयोनिमापन्नामूढाजन्मनिजन्मनि ।
मामप्राप्यैवकौन्तेय ततोयान्त्यधमांगतिम् २० ॥
त्रिविधंनरकस्येदं द्वारंनाशनमात्मनः ।
कामः क्रोधस्तथालोभस्तस्मादेतत्त्रयंत्यजेत् २१॥
एतैर्विमुक्तःकौन्तेयतमोद्वारैस्त्रिभिर्नरः ।
आचरत्यात्मनश्श्रेयस्ततोयातिपरांगतिम् २२ ॥

नरों को मैं सर्वदा कृमिकीटादियोनि में जन्म प्राप्ति के लिये इससंसार में नियोगकरता हूं १९ ॥

हे अर्जुन ! वे मूढ़लोग कृमिकीटादियोनि को प्राप्तहो जन्म जन्म मुझको प्राप्त न होकर तदनन्तर अधमगति को प्राप्त होते हैं २० ॥

ये तीनों अर्थात् काम क्रोध और लोभ विवेक ज्ञान नाशकरनेवाले नरक के द्वारहैं इसलिये इन तीनों का त्यागकरना उचितहै २१ ॥

हे अर्जुन ! जो पुरुष इन तीनों नरकप्रापक द्वारों से मुक्त होके अपना शुभाचरण करता है

यःशास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्त्ततेकामचारतः ।
नससिद्धिमवाप्नोति नसुखंनपरांगतिम् २३ ॥
तस्माच्छास्त्रंप्रमाणन्तेकार्य्याकार्य्यव्यवस्थितौ ।
ज्ञात्वाशास्त्रविधानोक्तंकर्म्मकर्त्तुमिहार्हसि २४ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सुदेवासुरसम्प
त्तियोगोनामषोडशोऽध्यायः १६ ॥

सो तदनन्तर मोक्षगतिको प्राप्त होता है २२ ॥
जो पुरुष शास्त्रविहित विधिको त्याग करके कामासक्त रहताहै सो सिद्धिको न प्राप्त होकर सुख और मोक्षको नहीं प्राप्त होता २३ ॥
हे अर्जुन ! इस हेतु कर्म्माचरण और त्याग की अवस्था में शास्त्रही प्रमाण है इसलिये शास्त्र विहित कर्त्तव्य और अकर्त्तव्यकर्म्म को जानकर कर्म्मअधिकारको आचरण करनेके योग्यहै २४ ॥

देवासुरसम्पत्तिनिरूपणसोलहवांअध्याय
समाप्तहुआ १६ ॥

अर्जुनउवाच ॥

येशास्त्रविधिमुत्सृज्ययजन्तेश्रद्धयान्विताः ।

तेषांनिष्ठातुकाकृष्णसत्त्वमाहोरजस्तमः १ ॥

श्रीभगवानुवाच ॥

त्रिविधाभवतिश्रद्धादेहिनांसास्वभावजा ।

सात्त्विकीराजसीचैवतामसीचेतितांशृणु २ ॥

अर्जुन प्रश्न करते हैं हे कृष्ण ! जो लोग शास्त्रविधिको त्यागकर श्रद्धायुक्तहो यज्ञ करते हैं उनकी क्या निष्टाहै सत्त्व रज या तम अर्थात् इन तीनोंगुणों में उनकी पूजा किस गुणवाली गिनी जाती है १ ॥

भगवान् उत्तर देते हैं प्राणियों को तीन प्रकारकी श्रद्धा स्वभावसे होतीहै अर्थात् सात्त्विकी राजसी और तामसी उसे निरूपण करताहूं सो सुनो २ ॥

सत्त्वानुरूपासर्व्वस्यश्रद्धाभवतिभारत ।
श्रद्धामयोयम्पुरुषोयोयच्छ्रद्धस्सएवसः ३ ॥
यजन्तेसात्त्विकादेवान्यक्षरक्षांसिराजसाः ।
प्रेतान्भूतगणांश्चान्ये यजन्तेतामसाजनाः ४ ॥
अशास्त्रविहितंघोरंतप्यन्तेयेतपोजनाः ।
दम्भाहङ्कारसंयुक्ताःकामरागबलान्विताः ५ ॥

सब मनुष्योंकी श्रद्धा सत्त्व के अनुसार होती है इसलिये वे मनुष्य श्रद्धावान् कहलाते हैं और जैसी जिसकी श्रद्धा राजसी या तामसी होती है वैसेही सब पुरुष कहलाते हैं ३ ॥

सात्त्विकश्रद्धावाले देवतोंकी आराधना करते हैं और राजसी लोग यक्ष और राक्षसोंकी उपासना करते हैं और तमोगुणवाले अपने गुण के अनुसार भूतप्रेतगणों की पूजा करते हैं ४ ॥

जो लोग शास्त्रविरुद्ध घोर कर्म्माचरण करते

कर्षयन्तःशरीरस्थंभूतग्राममचेतसः ।
मांचैवान्तश्शरीरस्थंतान्विद्ध्यासुरनिश्चयान्६॥
आहारस्त्वपिसर्वस्य त्रिविधोभवतिप्रियः ।
यज्ञस्तपस्तथादानं तेषांभेदमिमंशृणु ७ ॥

हैं और दम्भ अहङ्कार काम राग और दुराग्रहसे युक्त हैं ५ ॥

ऐसे लोग उपवास आदि नियम से शरीर स्थित पृथ्वीआदिपञ्चभूतसमुदाय और मुझको शरीर में व्याप्त न जानकर सुखाते हैं उन्हें तमोगुण प्रधान जानो क्योंकि विवेकज्ञानसे रहितहैं६॥

सात्त्विक आदि तीन प्रकारके मनुष्योंके आहार भी तीन प्रकारके प्रिय हैं और वैसेही यज्ञतप और दानभी उनके तीनप्रकार के हैं उसको निरूपण करताहूं सो सुनो ७ ॥

आयुस्सत्त्वबलारोग्य
सुखप्रीतिविवर्द्धनाः ।
रस्याः स्निग्धाः स्थिराहृद्या
आहाराः सात्त्विकप्रियाः ८ ॥
कट्वम्ललवणात्युष्ण
तीक्ष्णरुक्षविदाहिनः ।
आहाराराजसस्येष्टा
दुःखशोकामयप्रदाः ९ ॥

आयुष्य उत्साहशक्तिआरोग्यता और प्रीतिके बढ़ानेवाले रस और स्नेह से युक्त चिरकाल रस-रूप से शरीर में स्थित दर्शनहीसे चित्तको संतोष करनेवाले आहार सात्त्विकगुणवाले को प्रियहैं ८ ॥

कडुआ, खट्टा, खारा, गर्म, तीखा, रूखा और दाह युक्त ये आहार रजोगुणवाले को प्रियहैं जोकि दुःख शोक और रोगके उत्पादक हैं ९ ॥

यातयामंगतरसं पूतिपर्युषितंचयत् ।
उच्छिष्टमपिचामेध्यं भोजनंतामसप्रियम् १० ॥
अफलाकाङ्क्षिभिर्यज्ञो विधिदृष्टोयइज्यते ।
यष्टव्यमेवेतिमनः समाधायससात्त्विकः ११ ॥
अभिसंधायतुफलं दम्भार्थमपिचैवयत् ।
इज्यतेभरतश्रेष्ठतंयज्ञंविद्धिराजसम् १२ ॥

ठण्ढा निरस दुर्गन्धित बासी बचाहुआ और जूठा अपवित्र भोजन तामसियों को प्रियहै १० ॥ फलाकांक्षारहित पुरुषको शास्त्र केअनुसार यज्ञ करना उचित जानकर मनके निश्चयसे यज्ञ अनुष्ठान करतेहैं सो सात्त्विक यज्ञ कहलाताहै ११ ॥

हे अर्जुन ! जो लोग फलकी इच्छा से कपट आचरण से यज्ञ करते हैं सो राजस यज्ञ कहलाता है १२ ॥

विधिहीनमसृष्टान्नंमन्त्रहीनमदक्षिणम् ।
श्रद्धाविरहितंयज्ञं तामसंपरिचक्षते १३ ॥
देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनंशौचमार्जवम् ।
ब्रह्मचर्यमहिंसाचशारीरन्तपउच्यते १४ ॥
अनुद्वेगकरंवाक्यंसत्यम्प्रियहितञ्चयत् ।
स्वाध्यायाभ्यसनञ्चैववाङ्मयन्तपउच्यते १५ ॥

शास्त्रोक्त विधिसे रहित अयोग्यसामग्री कुमंत्र और विना दक्षिणा और विना श्रद्धाके जो यज्ञ आचरण कियाजाताहै सो तामसकहलाताहै १३॥

देवता ब्राह्मण गुरु और पूज्यलोगों की पूजा और अपनी पवित्रता और सुमार्ग से चलना ब्रह्मचर्य और अहिंसासे रहना यह शरीर तप कहलाता है १४ ॥

किसी को वार्तासे दुःख न देना सत्य बोलना

मनःप्रसादःसौम्यत्वंमौनमात्मविनिग्रहः ।
भावसंशुद्धिरित्येतत्तपोमानसमुच्यते १६ ॥
श्रद्धयापरयातप्तंतपस्तत्त्रिविधंनरैः ।
अफलाकांक्षिभिर्युक्तैःसात्त्विकंपरिचक्षते १७॥

प्रिय और हितकी बात कहना और वेदाभ्यास करना यह वाणी तप कहलाता है १५ ॥

इच्छा मन से सुमार्ग अनुसारी होकर मौन अर्थात् व्यर्थ भाषण छोड़ विषयों से इन्द्रियों को रोक स्वभाव से शुद्ध रहकर जो तप आचरण करते हैं सो मानसतप कहलाता है १६ ॥

उत्तम श्रद्धासे फलाकांक्षारहित एकाग्र चित्त वाले नरोंने जो तप आचरण किया सो सात्त्विक कहलाता है १७ ॥

सत्कारमानपूजार्थंतपोदम्भेनचैवयत् ।
क्रियतेतदिहप्रोक्तंराजसञ्चलमध्रुवम् १८ ॥
मूढग्राहेणात्मनोयत्पीडयाक्रियतेतपः ।
परस्योत्सादनार्थंवातत्तामसमुदाहृतम् १९ ॥
दातव्यमितियद्दानन्दीयतेऽनुपकारिणे ।
देशेकालेचपात्रेचतद्दानंसात्विकंस्मृतम् २० ॥

जो तप कपट से सत्कार मान और प्रतिष्ठाके हेतु आचरण किया जाताहै सो इस कर्म्मलोकमें राजस तप क्षणिक और अनित्य कहलाताहै १८॥

अविवेकतासे युक्त अयुक्त विचार न करके मन के खेदने या दूसरे के नाश के हेतु जो तप आचरण किया जाता है सो तामस कहलाता है १९ ॥

दातव्य बुद्धिसे पुण्यदेश पुण्यकाल में जो दान है और उस पुरुषसे अपना उपकार न करावे सो सात्विक कहलाता है २० ॥

यत्तुप्रत्युपकारार्थंफलमुद्दिश्यवापुनः ।
दीयतेचपरिक्लिष्टंतद्राजसमुदाहृतम् २१ ॥
अदेशकालेयद्दानमपात्रेभ्यश्चदीयते ।
असत्कृतमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतम् २२ ॥
ॐतत्सदितिनिर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधःस्मृतः ।
ब्राह्मणास्तेनवेदाश्च यज्ञाश्चविहिताःपुरा २३ ॥

जो दान उपकार की बुद्धि या स्वर्गादि फलके उद्देश और खेदित चित्तसे दिया जाताहै सो राजस कहलाता है २१ ॥

जो दान अपवित्र देश और कुसमय में अयोग्य को असत्कार से निन्दापूर्वक देते हैं सो तामस कहलाता है २२ ॥

पूर्वकालमें ॐतत्सत् के उच्चारण से ब्रह्मके तीन प्रकार के स्मरण हैं उससे ब्राह्मण वेद और यज्ञ

तस्मादोमित्युदाहृत्ययज्ञदानतपःक्रियाः ।
प्रवर्तन्तेविधानोक्ताःसततंब्रह्मवादिनाम् २४ ॥
तदित्यनभिसन्धाय फलंयज्ञतपःक्रियाः ।
दानक्रियाश्चविविधाःक्रियन्तेमोक्षकांक्षिभिः२५
सद्भावेसाधुभावेच सदित्येतत्प्रयुज्यते ।
प्रशस्तेकर्मणितथा सच्छब्दःपार्थयुज्यते २६ ॥

ये तीनों निर्माण कियेगये हैं इसलिये वेद जानने वाले पुरुषको यज्ञ दान और तपमें सर्वदा शास्त्रोक्त प्रकारसे ॐकारपूर्वक प्रवृत्तहोना उचितहै २३।२४॥

मुमुक्षुपुरुष यह निश्चय न करके कि इसका यह फल हमको मिलै अनेकप्रकार के दान यज्ञ और तप करते हैं इसी से चित्तशुद्धिके द्वारा मोक्ष उपयोगी होते हैं २५ ॥

सद्भाव और साधुभाव योग्य कर्म्म में भी हे अर्जुन ! सत्शब्दका प्रयोग होता है २६ ॥

यज्ञेतपसिदानेच स्थितिस्सदितिचोच्यते ।
कर्मचैवतदर्थीयं सदित्येवाभिधीयते २७ ॥
अश्रद्धयाहुतंदत्तं तपस्तप्तंकृतञ्चयत् ।
असदित्युच्यतेपार्थ नचतत्प्रेत्यनोइह २८ ॥
इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सुत्रिगुणात्रि
भागयोगोनामसप्तदशोऽध्यायः १७ ॥

यज्ञ दान और तप तीनों में जो स्थिरतासे हो सत्‌शब्दका प्रयोग होताहै और इनके सम्बन्धी कर्म में भी सत्‌शब्दका प्रयोग होता है २७ ॥
हे पार्थ ! अश्रद्धा से जो होम दान तप और कुछ कर्म्म किया जाता है सो असत् कहलाता है इसलिये वह इस लोक और परलोक में उपकारी नहीं होता २८ ॥

गुणत्रयविभागनिरूपण नामक सत्रहवां
अध्याय समाप्त हुआ १७ ॥

अष्टादश अध्याय ॥

अर्जुनउवाच ॥

संन्यासस्यमहाबाहोतत्त्वमिच्छामिवेदितुम् ।
त्यागस्यचहृषीकेश पृथक्केशिनिषूदन १ ॥

श्रीभगवानुवाच ॥

काम्यानांकर्मणांन्यासं संन्यासंकवयोविदुः ।
सर्वकर्मफलत्यागं प्राहुस्त्यागंविचक्षणाः २ ॥

अर्जुन प्रश्न करते हैं कि हे महाबाहो, श्रीकृष्ण ! संन्यास और त्याग दोनों के पृथक् पृथक् स्वरूप जानने की इच्छा करता हूं क्योंकि तुम सम्पूर्ण इन्द्रियों के ईश्वर और केशी नामक पराक्रमी दैत्य के नाशक हो १ ॥

भगवान् उत्तर देते हैं कि सम्पूर्ण काम्यकर्मों के त्यागही को पण्डित लोग संन्यास जानते हैं

त्याज्यंदोषवदित्येकेकर्मप्राहुर्मनीषिणः ।
यज्ञदानतपःकर्म नत्याज्यमितिचापरे ३ ॥
निश्चयंशृणुमेतत्रत्यागेभरतसत्तम ।
त्यागोहिपुरुषव्याघ्रत्रिविधस्सम्प्रकीर्तितः ४ ॥

और विचारवान् पुरुष सम्पूर्ण कर्मों के फलत्याग ही को त्याग कहते हैं कर्म्म त्याग करना आवश्यक नहीं २ ॥

विवेकी लोग सम्पूर्ण कर्मों में दोष देखकर त्यागकरना उसका उचित कहते हैं क्योंकि सम्पूर्ण कर्म अर्थमूलक हैं और मीमांसक लोग यज्ञ दान और तपआदिकर्मों को कहते हैं कि त्याग करना उचित नहीं ३ ॥

हे अर्जुन ! त्याग के विषय में हमारा निश्चय यह है सुनो कि जिस कारण से तत्त्वदर्शी लोग त्याग के भेदको तीन प्रकार कहते हैं ४ ॥

यज्ञदानतपःकर्मनत्याज्यंकार्य्यमेवतत् ।
यज्ञोदानन्तपश्चैवपावनानिमनीषिणाम् ५ ॥
एतानपितुकर्माणिसङ्गन्त्यक्त्वाफलानिच ।
कर्त्तव्यानीतिमेपार्थनिश्चितम्मतमुत्तमम् ६ ॥
नियतस्यतुसंन्यासःकर्मणोनोपपद्यते ।
मोहात्तस्यपरित्यागस्तामसःपरिकीर्तितः ७ ॥

यज्ञ दान और तप तीनों करने के योग्य हैं कदापि इनका त्याग उचित नहीं क्योंकि यज्ञ आदि कर्म्म बुद्धिमान् लोगोंके चित्तशुद्धिका हेतुहै ५ ॥

हे पार्थ ! जिसप्रकार से मैंने कर्म्म करने को कहा है उसप्रकार से करै फेर कर्म्म, फल और अभिमान त्यागकरके यहमेरा निश्चय, और उत्तम मत है ६ ॥

नित्यविहित कर्मोंका त्याग नहीं सम्भव होता

दुःखमित्येवयत्कर्मकायक्लेशभयात्त्यजेत् ।
सकृत्वाराजसन्त्यागन्नैवत्यागफलंलभेत् ८ ॥
कार्य्यमित्येवयत्कर्मनियतंक्रियतेऽर्जुन ।
सङ्गन्त्यक्त्वाफलञ्चैवसत्यागःसात्त्विकोमतः ९॥

यदि अपनी अविवेकता से उनका त्यागकरै तो तामस त्याग कहलाता है ७ ॥

जो पुरुष कर्म्म को दुःख जानकर यह शरीर की पीड़ाके भयमें त्याग करेगा सो राजस त्यागी है इसलिये वह कर्म्मत्याग का फल उसे नहीं मिलेगा ८ ॥

हे अर्जुन ! जो कर्म्म नित्य करनेके योग्यहै उसे जानकर फल और अभिमान त्यागकर आचरण करै सो सात्त्विक त्याग है और हमारी जान में उत्तम है ९ ॥

नद्वेष्ट्यकुशलङ्कर्म कुशलेनानुषज्जते ।
त्यागीसत्त्वसमाविष्टो मेधावीछिन्नसंशयः १० ॥
नहिदेहभृताशक्यं त्यक्तुङ्कर्माण्यशेषतः ।
यस्तुकर्मफलत्यागीसत्यागीत्यभिधीयते ११ ॥
अनिष्टमिष्टम्मिश्रंच त्रिविधंकर्मणःफलम् ।
भवत्यत्यागिनांप्रेत्य नतुसंन्यासिनांक्वचित् १२॥

जो पुरुष दुःखदायक कर्मोंसे द्वेष न करै और सुखदायी कर्मों में सुख आचरण न करै तो वह सात्त्विक त्यागी बल और बुद्धिको प्राप्त होताहै और संशय से भी निवृत्त होता है १० ॥

यह देहधारी मनुष्य सम्पूर्ण कर्मों का त्याग नहीं करसक्ता है इससे जो कर्म्मफल की इच्छा छोड़कर कर्म्म त्याग करेगा सो त्यागी कहलावेगा ११ ॥

कर्म्मफल तीन प्रकारका है नष्ट इष्ट और इष्ट

पञ्चैतानिमहाबाहो कारणानिनिबोधमे ।
सांख्येकृतान्तेप्रोक्तानिसिद्धयेसर्वकर्मणाम् १३॥
अधिष्ठानंतथाकर्ता करणञ्चपृथग्विधम् ।
विविधाश्चपृथक्चेष्टा दैवंचैवात्रपञ्चमम् १४ ॥

मिश्रित सो सकाम पुरुषोंको ये तीनोंका फल शरीर त्यागनेपर मिलताहै और संन्यासी अर्थात् कर्म-फलत्यागी इन तीनों प्रकार के फल को नहीं प्राप्त होते १२ ॥

हे महाबाहो, अर्जुन ! सम्पूर्ण कर्मोंकी सिद्धि के हेतु सांख्य और वेदान्त में पांचो कारण निरूपण कियेहैं सो तुम्हारे हेतु कहताहूं सुनो १३ ॥

पहिला अधिष्ठान अर्थात् शरीर और दूसरा कर्त्ता अर्थात् अहङ्कार तीसरा पृथक् पृथक् इन्द्रियां चौथी नानाप्रकारकी चेष्टा और पांचवां दैवका कारण जानो १४ ॥

शरीरवाङ्मनोभिर्यत्कर्मप्रारभ्यतेनरः ।
न्याय्यंवाविपरीतंवापञ्चैतेतस्यहेतवः १५ ॥
तत्रैवंसतिकर्तारमात्मानंकेवलन्तुयः ।
पश्यत्यकृतबुद्धित्वान्नसपश्यतिदुर्मतिः १६ ॥
यस्यनाहंकृतोभावो बुद्धिर्यस्यनलिप्यते ।
हत्वापिसइमाँल्लोकान्नहन्तिननिबध्यते १७ ॥

शरीर वाणी और मनके भेद से कर्म्म तीन प्रकारके हैं उन्हें न्याय अथवा अन्यायसे मनुष्य जो आरम्भ करताहै उसके वही पांचो कारणहैं १५ ॥

सम्पूर्ण कर्मों में पूर्वोक्त पांचो कारण होते हैं तिन्हें न जानकर जो पुरुष केवल आत्मा को कर्त्ता जानताहै सो शास्त्र और गुरुउपदेश ज्ञान से रहित हो दृश्य वस्तु को अविवेकता से देख नहीं सक्ता १६ ॥

जिस पुरुषमें अहङ्कार नहीं सो सर्वदर्शी पुरुष

ज्ञानंज्ञेयंपरिज्ञाता त्रिविधाकर्मचोदना ।
करणंकर्मकर्तेति-त्रिविधःकर्मसंग्रहः१८ ॥
ज्ञानंकर्मचकर्ताच त्रिधैवगुणभेदतः ।
प्रोच्यतेगुणसंख्याने यथावच्छृणुतान्यपि१९ ॥

सम्पूर्ण प्राणियों को लोकदृष्टि से पृथक् और विवेक दृष्टि से भिन्न नहीं देखता सो सबको हनन भी करै तो नहीं किया जानो और न किसी कर्म्मफलसे वद्ध होता है क्योंकि उसकी पापशंका दूर होगई है १७ ॥

कर्म्म की प्रेरणा ज्ञान ज्ञेय और ज्ञाताके भेद से तीन प्रकारकी है और उनके गुण कर्म्म और कर्त्ता इन तीनों भेदोंसे कर्म्मसंग्रह करनेवाले कारक भी तीन प्रकारके हैं १८ ॥

ज्ञान कर्म्म और कर्त्ता ये तीनों प्रत्येक सत्त्वादि गुणों के भेद से सांख्य शास्त्र में जैसा कहाहै सो निरूपण करता हूं सुनो १९ ॥

सर्वभूतेषु येनैकं भावमव्ययमीक्षते ।
अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धि सात्त्विकम् २० ॥
पृथक्त्वेन तु यज्ज्ञानं नानाभावान्पृथग्विधान् ।
वेत्ति सर्वेषु भूतेषु तज्ज्ञानं विद्धि राजसम् । २१ ॥
यत्तु कृत्स्नवदेकस्मिन् कार्य्ये सक्तमहैतुकम् ।
अतत्त्वार्थवदल्पं च तत्तामसमुदाहृतम् २२ ॥

जो पुरुष सम्पूर्ण स्थावरादि भूतोंमें निर्विकार परमात्मा तत्त्व एक रूपसे भिन्न भिन्न में अभेद देखता है और उसका ज्ञान सात्त्विक है २० ॥

जो ज्ञान सम्पूर्ण भूतों में सुख दुःख आदि नानाप्रकार के स्वभावसे भिन्न भिन्न देखाई पड़ता है सो राजस है २१ ॥

जो ज्ञान एकही देहादि कार्य्य में सम्पूर्णतासे ईश्वर के परिच्छिन्न रूपसे विना प्रमाण और अपारमार्थिक है सो तामस और तुच्छहै २२ ॥

नियतंसङ्गरहितमरागद्वेषतःकृतम् ।
अफलप्रेप्सुनाकर्मयत्तत्सात्त्विकमुच्यते २३ ॥
यत्तुकामेप्सुनाकर्मसाहङ्कारेणवापुनः ।
क्रियतेबहुलायासन्तद्राजसमुदाहृतम् २४ ॥
अनुबन्धंक्षयंहिंसामनवेक्ष्यचपौरुषम् ।
मोहादारभ्यतेकर्म तत्तामसमुदाहृतम् २५ ॥

जो कर्म्म नित्य विधिविहित और कर्तृत्वाभिमानरहित और विना राग द्वेष और फलप्राप्ति की इच्छाविनासे किया जाताहै सो सात्त्विक कर्म्म कहलाता है २३ ॥

जो कर्म्म मन की कामना की सिद्धि के हेतु या अहंकार से बहुत क्लेशके साथ कियाजाता है सो राजस कहलाता है २४ ॥

जो कर्म्मफल द्रव्यनाश परपीड़ा और अपनी

मुक्तसङ्गोनहंवादीधृत्युत्साहसमन्वितः ।
सिद्ध्यसिद्ध्योर्निर्विकारःकर्त्तासात्त्विकउच्यते २६
रागीकर्मफलप्रेप्सुर्लुब्धोहिंसात्मकोऽशुचिः ।
हर्षशोकान्वितःकर्त्ताराजसःपरिकीर्तितः २७ ॥

सामर्थ्य के बिना विचार केवल अविवेकता से आरम्भ किया जाताहै सो तामस कहलाताहै २५॥

जो पुरुष कर्तृत्वाभिमान त्याग और अपना पुरुषार्थ न प्रकट करके धैर्य और सन्तोषयुक्त हो उसकी सिद्धि और असिद्धि का हर्ष विषाद छोड़कर कर्म में प्रवृत्त होताहै सो सात्त्विककर्त्ता कहलाता है २६ ॥

जो पुरुष रागयुक्त हो कर्मफल की इच्छा, लोभ और हिंसासे युक्त अपवित्र रहकर उसकी प्राप्तिमें सन्तोष और अप्राप्ति से दुःखीहो कर्म करता है सो राजसकर्त्ता कहलाता है २७ ॥

अयुक्तःप्राकृतःस्तब्धः शठोनैष्कृतिकोऽलसः ।
विषादीदीर्घसूत्रीचकर्त्तातामसउच्यते २८ ॥
बुद्धेर्भेदंधृतेश्चैव गुणतस्त्रिविधंशृणु ।
प्रोच्यमानमशेषेणपृथक्त्वेनधनञ्जय २९ ॥
प्रवृत्तिञ्चनिवृत्तिञ्च कार्याकार्येभयाभये ।
बन्धंमोक्षंचयावेत्तिबुद्धिःसापार्थसात्त्विकी ३० ॥

जो पुरुष शिक्षितमार्ग त्यागकर विवेकशून्य और अनम्रहो छलसे दूसरे के तिरस्कार में प्रवृत्त हो आलस्यसहित दुःखित और दीर्घविचार से कर्म्म करता है सो तामस कहलाता है २८ ॥
हे अर्जुन ! बुद्धि और धैर्य दोनों सत्त्वादि गुणके भेदसे तीन प्रकार के हैं उनका भेद पृथक् पृथक् आगे निरूपण करेंगे सो सुनो २९ ॥
हे अर्जुन ! जो बुद्धि धर्म्म में प्रवृत्त और

ययाधर्म्ममधर्म्मञ्चकार्य्यंचाकार्य्यमेवच।
अयथावत्प्रजानाति बुद्धिःसापार्थराजसी ३१ ॥
अधर्म्मंधर्म्ममितियामन्यतेतमसावृता।
सर्व्वार्थान्विपरीतांश्च बुद्धिःसापार्थतामसी ३२॥

अधर्म्म में निवृत्ति विहित कार्य में अभय और निन्दित कर्ममें भयकरे और बन्ध मोक्षका कारण जाननेवाली हो सो सात्त्विकी है ३० ॥

हे अर्जुन ! पुरुष जिस बुद्धिसे धर्म्म अधर्म्म कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य को सन्देह से देखताहै सो राजसी बुद्धि कहलाती है ३१ ॥

हे अर्जुन! जिस बुद्धि से धर्म्मको अधर्म्म और सम्पूर्ण पदार्थों को अन्यथाभाव से देखता है सो अज्ञानाच्छादित होनेसेतामसीबुद्धिकहलातीहै ३२॥

धृत्यायययाधारयते मनःप्राणेन्द्रियक्रियाः ।
योगेनाव्यभिचारिण्या धृतिःसापार्थसात्त्विकी ३३
यया तु धर्म्मकामार्थान्धृत्याधारयतेऽर्जुन ।
प्रसङ्गेनफलाकांक्षी धृतिःसापार्थराजसी ३४ ॥
ययास्वप्नंभयंशोकंविषादंमदमेवच ।
नविमुञ्चतिदुर्मेधाधृतिःसापार्थतामसी ३५ ॥

हे पार्थ ! जिस धारणाशक्ति से पुरुष मन प्राण और इन्द्रिय की क्रियाओंका धारण करता है सो एकाग्र युक्त होने से वह धारणाशक्ति सात्त्विकी कहलाती है ३३ ॥

हे अर्जुन ! जिस धारणाशक्तिसे धर्म्म कामादि के सम्बन्ध में फलकी इच्छा करताहै सो राजसी धारणाशक्ति कहलाती है ३४ ॥

हे अर्जुन ! जिस धारणाशक्ति से पुरुष स्वप्न

सुखन्त्विदानींत्रिविधंशृणुमेभरतर्षभ ।
अभ्यासाद्रमतेयत्रदुःखान्तञ्चनिगच्छति ३६ ॥
यत्तदग्रेविषमिवपरिणामेऽमृतोपमम् ।
तत्सुखंसात्विकंप्रोक्तमात्मबुद्धिप्रसादजम् ३७ ॥

भय शोक विषाद और उन्मत्तताको नहीं त्याग करता सो धृति तामसी कहलाती है ३५ ॥

हे अर्जुन ! अब सुखको सत्त्वादिगुणसे तीन प्रकार में निरूपण करताहूं सो सुनो जिस सुख में अभ्याससे चित्त रमताहै और दुःखसे निवृत्ति भी होता है ३६ ॥

जो पहिले विषवत् देखपड़ता और परिणाम उसका अमृततुल्य होताहै सो सुखमन और बुद्धि को स्वच्छकारी होनेसे सात्त्विक कहलाताहै ३७॥

विषयेन्द्रियसंयोगाद्यत्तदग्रेऽमृतोपमम् ।
परिणामेविषमिवतत्सुखंराजसंस्मृतम् ३८ ॥
यदग्रेचानुबन्धेचसुखंमोहनमात्मनः ।
निद्रालस्यप्रमादोत्थंतत्तामसमुदाहृतम् ३९ ॥
नतदस्तिपृथिव्यांवा दिविदेवेषुवापुनः ।
सत्त्वंप्रकृतिजैर्मुक्तं यदेभिःस्यात्त्रिभिर्गुणैः ४० ॥

हे अर्जुन ! विषय और इन्द्रिय के संयोग से सुख उत्पन्न होताहै उसमें जो पहिले अमृततुल्य देखाईदे के अन्त में विषकी नाईं दुःखदायी होता है सो राजस सुख कहलाता है ३८ ॥

जो सुख पहिले और अनुभव के अनन्तर मन मोहकहै और निद्रा आलस्य और अविवेकता से उत्पन्न होताहै सो तामस सुख कहलाताहै ३९ ॥

प्रकृतिजन्य सत्त्वादि तीनोंगुणोंसे छुटीहुई वस्तु या प्राणी पृथ्वी स्वर्ग या देवलोकमें है नहीं ४० ॥

ब्राह्मणक्षत्रियविशांशूद्राणाञ्चपरन्तप ।
कर्माणिप्रविभक्तानि स्वभावप्रभवैर्गुणैः ४१ ॥
शमोदमस्तपःशौचंक्षान्तिरार्जवमेवच ।
ज्ञानंविज्ञानमास्तिक्यंब्रह्मकर्मस्वभावजम् ४२ ॥
शौर्य्यन्तेजोधृतिर्दाक्ष्यंयुद्धेचाप्यपलायनम् ।
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रंकर्मस्वभावजम् ४३ ॥

हे अर्जुन ! ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र चारों वर्णों के सत्त्वादिस्वभावजन्य गुणोंके यथा योग्य उनके पृथक् पृथक् विभागकियेगयेहैं ४१ ॥

चित्तशान्ति बाह्य इन्द्रिय का निग्रह तप बाह्यान्तर शौच क्षमा निश्छलता शास्त्रजन्य ज्ञान अनुभवजन्य विज्ञान और परलोकविषयक नित्यत्वबुद्धि ये ब्राह्मणके स्वभावसिद्ध कर्म्महैं ४२॥

शौर्य तेज धैर्य चातुर्य्य युद्धसे न भागना

कृषिगोरक्ष्यवाणिज्यंवैश्यकर्मस्वभावजम् ।
परिचर्यात्मकंकर्म शूद्रस्यापिस्वभावजम् ४४ ॥
स्वेस्वेकर्मण्यभिरतः संसिद्धिंलभतेनरः ।
स्वकर्मनिरतःसिद्धिं यथाविन्दतितच्छृणु ४५ ॥

उदारता और प्रजापालन आदि ये सब क्षत्रिय के स्वभावसिद्ध कर्म हैं ४३ ॥

खेती बारी करना गौ चरावना वाणिज्य करना ये वैश्य के स्वभावसिद्ध कर्म हैं और शूद्रका ब्राह्मणआदि तीनोंवर्णों की सेवा करना स्वभाव सिद्ध कर्म है ४४ ॥

अपने अपने कर्म में मनुष्य आसक्त होकर उसकी सिद्धिको प्राप्त होता है अब स्वकर्म युक्त पुरुष जैसे तत्त्वज्ञानको प्राप्त होता है सो कहता हूं सुनो ४५ ॥

यतःप्रवृत्तिर्भूतानां येनसर्व्वमिदन्ततम् ।
स्वकर्म्मणातमभ्यर्च्य सिद्धिंविन्दतिमानवः ४६॥
श्रेयान्स्वधर्म्मोविगुणः परधर्म्मात्स्वनुष्ठितात् ।
स्वभावनियतङ्कर्म्म कुर्वन्नाप्नोतिकिल्विषम् ४७॥
सहजंकर्म्मकौन्तेयसदोषमपिनत्यजेत् ।
सर्व्वारम्भाहिदोषेण धूमेनाग्निरिवावृतः ४८॥

जिस परमेश्वर से सम्पूर्ण प्राणियोंकी प्रवृत्ति होतीहै और जिसमें सम्पूर्ण जगत् व्याप्त है उस परमेश्वर को अपने विहित कर्म्म से आराधना करके मनुष्य सिद्धिको प्राप्त होता है ४६ ॥

यथायोग्य अनुष्टान किये हुये परमधर्म्म से अपना धर्म्म न्यून आचरण भी श्रेष्ठ है क्योंकि अपने अपने स्वभावसिद्ध कर्म्मकोआद्यसेआचरण करते हुये मनुष्य दुःखको नहीं प्राप्त होताहै ४७॥

हे अर्जुन ! अपना स्वभाव विहितकर्म्म यदि

असक्तबुद्धिस्सर्वत्र जितात्माविगतस्पृहः ।
नैष्कर्म्यसिद्धिंपरमां संन्यासेनाधिगच्छति ४९ ॥
सिद्धिंप्राप्तोयथाब्रह्म तथाप्नोतिनिबोधमे ।
समासेनैवकौन्तेय निष्ठाज्ञानस्ययापरा ५० ॥

दोषयुक्त भी हो तो त्याग करना उसका उचित नहीं क्योंकि सम्पूर्ण कर्म्मोंका आरम्भ दोषसे युक्तही है जैसे धूम्रसे अग्नि आवृत है ४८ ॥

जो पुरुष असंग बुद्धि और अहङ्कारजित आत्मा किसी विषयकी इच्छा न करके व्यवहार करताहै वह संन्यास से श्रेष्ठ सम्पूर्ण कर्म्म त्यागकर ब्रह्मात्मभावरूप सिद्धिको प्राप्त होताहै ४९ ॥

हे अर्जुन ! जिस प्रकार से पुरुष निष्कर्म्म सिद्धिको प्राप्तहोके ब्रह्मको प्राप्त होताहै सोप्रकार संक्षेप में कहताहूं सुनो क्योंकि निष्कर्म्म सिद्धि ज्ञानका हेतु है ५० ॥

बुद्ध्याविशुद्धयायुक्तो धृत्यात्मानंनियम्यच ।
शब्दादीन्विषयांस्त्यक्त्वारागद्वेषौव्युदस्यच ५१॥
विविक्तसेवीलघ्वाशी यतवाक्कायमानसः ।
ध्यानयोगपरोनित्यं वैराग्यंसमुपाश्रितः ५२ ॥
अहङ्कारंबलंदर्पं कामंक्रोधंपरिग्रहम् ।
विमुच्यनिर्ममश्शान्तो ब्रह्मभूयायकल्पते ५३ ॥

सात्त्विक बुद्धिसे युक्तहोकर धारणाशक्तिसे उस-को निश्चलकर शब्दादिक विषय और राग को त्यागकरै ५१ ॥

एकान्तदेशमें निवासकरके युक्ताहारहो वाणी शरीर और मन नियत होकर वैराग्यसे युक्तहो ध्यानयोग में तत्पर होवे ५२ ॥

अहंकार बल दर्प काम क्रोध और परिग्रहको त्याग निर्ममता हो शान्त रहै वह ब्रह्मभाव को प्राप्तहोने के योग्य होताहै ५३ ॥

ब्रह्मभूतःप्रसन्नात्मा नशोचतिनकांक्षति ।
समस्सर्वेषुभूतेषुमद्भक्तिंलभतेपराम् ५४ ॥
भक्त्यामामभिजानाति यावान्यश्चास्मितत्त्वतः ।
ततोमान्तत्त्वतोज्ञात्वा विशतेतदनन्तरम् ५५ ॥
सर्वकर्माण्यपिसदा कुर्वाणोमद्व्यपाश्रयः ।
मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतंपदमव्ययम् ५६ ॥

ब्रह्मभाव को प्राप्तभया हुआ पुरुष मन संतुष्ट होकर न तो शोक करता और न किसी वस्तु की इच्छा और सम्पूर्ण भूतों को समान देखते हुये मेरी उत्तम भक्तिको प्राप्त होता है ५४ ॥

अचलभक्तिद्वारा जो मुझको यथार्थरूपसे सच्चिदानन्द और सर्वव्यापी जानता है इस जानने के अनन्तर ऐसे तत्त्वज्ञान से परमानन्दरूप होता है ५५ ॥

नित्यनैमित्तिकसेवी कर्मों को सदा करते हुये

चेतसासर्वकर्माणि मयिसंन्यस्यमत्परः ।
बुद्धियोगमुपाश्रित्य मच्चित्तः सततम्भव ५७ ॥
मच्चित्तःसर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि ।
अथचेत्त्वमहङ्कारान्नश्रोष्यसिविनङ्क्ष्यसि ५८ ॥

केवल मुझी को आश्रय जाननेवाला पुरुष मेरे अनुग्रह से अनादि शाश्वत परमपद को प्राप्त होताहै ५६ ॥

मुझी को परमपुरुषार्थ समझ के सम्पूर्ण कर्मों को मनसे मुझ में अर्पणकर एकाग्र बुद्धि से युक्तहो सर्वदा मेरे ध्यान में तत्पर रहो ५७ ॥

तुम मेरे ध्यान में युक्तहो तो मेरे अनुग्रह से संसारसम्बन्धी दुःखों से तरजावोगे यदि अहंकार से मेरी बात न सुनो तो अपने पुरुषार्थसे भ्रष्ट होजावोगे ५८ ॥

यदहङ्कारमाश्रित्य नयोत्स्यइतिमन्यसे ।
मिथ्यैवव्यवसायस्तेप्रकृतिस्त्वांनियोक्ष्यति ५९ ॥
स्वभावजेनकौन्तेय निबद्धःस्वेनकर्म्मणा ।
कर्त्तुंनेच्छसियन्मोहात्करिष्यस्यवशोपितत् ६० ॥
ईश्वरस्सर्वभूतानांहृद्देशेऽर्जुनतिष्ठति ।
भ्रामयन्सर्वभूतानियन्त्रारूढानिमायया ६१ ॥

मेराकहना न मानकरके अपने अहंकारके वश हो युद्ध करोगे तो तुम्हारायह युद्धका प्रयत्नव्यर्थ होगा तथापि रजोगुणके वशहो स्वभाव तुम्हारा तुम्हें प्रवृत्त करेहोगा ५९ ॥

हे अर्जुन ! स्वभाव सिद्ध अपने शौर्यादिककर्म से निबद्ध होके जिस मोहसे करनेकी इच्छासेनहीं करते तिस परवश होके अवश्य करोगे ६० ॥

हे अर्जुन ! परमेश्वर अपनी मायासे सम्पूर्ण

तमेवशरणंगच्छ सर्वभावेनभारत ।
तत्प्रसादात्परांशांतिंस्थानंप्राप्स्यसिशाश्वतम् ६२
इतितेज्ञानमाख्यातंगुह्याद्गुह्यतरम्मया ।
विमृश्यैतदशेषेणयथेच्छसितथाकुरु ६३ ॥
सर्वगुह्यतमम्भूयःशृणुमेपरमंवचः ।
इष्टोसिमेदृढमितिततोवक्ष्यामितेहितम् ६४ ॥

शरीरधारी भूतोंको भ्रमाताहुआ उनके हृदयमें निवास करता है ६१ ॥

हे भारत, अर्जुन ! सबप्रकारसे उसीपरमेश्वर के शरणागतहो उसीके अनुग्रहसे उत्कृष्ट शांति और अविनाशी मोक्षपद को प्राप्तहोगे ६२ ॥

इसप्रकार से गोपनीय ज्ञान मैंने तुमसे कहा उस सम्पूर्ण पूर्वोक्त ज्ञानको विचार करके जैसी तुम्हारी इच्छाहो वैसा करो ६३ ॥

सम्पूर्ण गोपनीय से गोपनीय मेरा उत्कृष्ट

मन्मनाभवमद्भक्तो मद्याजीमांनमस्कुरु ।
मामेवैष्यसिसत्यन्ते प्रतिजाने प्रियोसि मे ६५ ॥
सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकंशरणं व्रज ।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामिमाशुचः ६६ ॥

वचन फिर सुनो क्योंकि तुम मेरे अत्यन्त इष्टहो इसलिये तुमपर विश्वास करके हित उपदेश करताहूं ६४ ॥

मुझमें मन लगाके मेरी भक्ति मेरा यज्ञ और नमस्कार आदि मुझीको करो क्योंकि मुझीमें प्राप्त होगे यह मैं प्रतिज्ञा करताहूं ६५ ॥

नानाप्रकार के कार्यों को त्यागकर केवल मेरे शरणागत हो मैं सम्पूर्ण पापोंसे छोड़ाऊंगा इसलिये कर्मत्यागजनित दोषसे शोक न करो ६६ ॥

इदन्तेनातपस्काय नाभक्ताय कदाचन ।
नचाशुश्रूषवे वाच्यं न च मां योऽभ्यसूयति ६७ ॥
यइदं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति ।
भक्तिं मयि परां कृत्वामामेवैष्यत्यसंशयः ६८ ॥
न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः ।
भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि ६९ ॥

यह गीताशास्त्र तुम उस मनुष्य को न देना जो अपने धर्म्म का अनुष्ठान और मेरी भक्ति और गुरु की सेवा नहीं करता और मुझको मनुष्य जानकर निन्दा करता है ६७ ॥

जो पुरुष यह रहस्य गीताशास्त्र मेरे भक्तों को उपदेश करताहै सो मेरी उत्कृष्टभक्तिकरतेहुये संशयसे मुक्तहो मुझ में प्राप्त होताहै ६८ ॥

इस मृत्युलोक में मनुष्योंके बीच उससे अत्यन्त प्रिय कोई भी मुझको न है न भयाहै न होगा ६९ ॥

अध्येष्यते च य इमं धर्म्यं संवादमावयोः ।
ज्ञानयज्ञेनतेनाहमिष्टःस्यामिति मे मतिः ७० ॥
श्रद्धावाननसूयश्चशृणुयादपियो नरः ।
सोपिमुक्तःशुभाँल्लोकान्प्राप्नुयात्पुण्यकर्मणाम् ७१
कच्चिदेतच्छ्रुतम्पार्थत्वयैकाग्रेणचेतसा ।
कच्चिदज्ञानसंमोहःप्रणष्टस्ते धनञ्जय ७२ ॥

जो पुरुष यह हमारा तुम्हारा धर्मयुक्त संवाद पढ़ैगा सो ज्ञानयज्ञ से आराधन करके मुझको सन्तुष्ट करेगा यह मुझको निश्चय है ७० ॥

जो पुरुष श्रद्धायुक्त और परनिन्दारहित होकर इस गीतातत्त्वको श्रवणकरता है सो भी संसार में मुक्तहोके उस शुभलोक में प्राप्त होगा जिसमें पुण्यकर्म करनेवाले जाते हैं ७१ ॥

हे अर्जुन ! यह जो गीतासार तुमने एकाग्र

अर्जुनउवाच ॥

नष्टोमोहस्स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत ।

स्थितोऽस्मिगतसन्देहः करिष्ये वचनन्तव ७३ ॥

सञ्जयउवाच ॥

इत्यहंवासुदेवस्यपार्थस्य च महात्मनः ।

संवादमिममश्रौषमद्भुतंरोमहर्षणम् ७४ ॥

चित्तसे श्रवण किया इससे कुछ फल मिला या नहीं और अज्ञान से उत्पन्नभया हुआ मोह तुम्हारा नष्ट भया या नहीं ७२ ॥

अर्जुन उत्तरदेतेहैं हे अच्युत, श्रीकृष्ण ! तुम्हारे अनुग्रहसे मेरा मोह नष्टभया और मुझको स्वरूप की स्मृति लाभ हुई और सन्देहसे निवृत्त होकर स्थिर हुआ अब जो कहो सो करूंगा ७३ ॥

सञ्जय धृतराष्ट्र से कहते हैं श्रीकृष्ण और

व्यासप्रसादाच्छ्रुतवानिमंगुह्यमहम्परम् ।
योगंयोगेश्वरात्कृष्णात्साक्षात्कथयतस्स्वयम् ७५
राजन्संस्मृत्य संस्मृत्य संवादमिममद्भुतम् ।
केशवार्जुनयोःपुण्यं हृष्यामि च मुहुर्मुहुः ७६ ॥

अर्जुन दोनोंका अतिअद्भुत और रोमहर्षण यह संवाद मैंने सुना ७४ ॥

व्यासजी के प्रसादसे मैंने इस परमगोपनीय गीतायोग को जो श्रीकृष्णयोगेश्वर ने अपने मुख से कहा सो सुना ७५ ॥

हे धृतराष्ट्र ! कृष्ण और अर्जुनका यह सांख्य योग कर्मयोगकर्म्मसंन्यासयोग संन्यासयोग आत्म संयमयोग ज्ञानविज्ञानयोग महापुरुषयोग राजविद्या राजगुह्ययोग विभूतियोग विश्वरूपदर्शन भक्तियोग क्षेत्रक्षेत्रज्ञनिर्देश प्रकृतिगुणत्रयविभाग योग पुरुषोत्तमप्राप्तियोग देवासुरसम्पत्तियोग

तच्चसंस्मृत्यसंस्मृत्य रूपमत्यद्भुतं हरेः ।
विस्मयो मे महान् राजन् हृष्यामि च पुनःपुनः७७॥

त्रिगुणविभागयोग मोक्षसंन्यासयोगरूप संवाद अतिअद्भुत और पुण्यदायक जब जब स्मरण होताहै तब तब अतिसन्तोपको प्राप्तहोताहूं ७६ ॥

हे धृतराष्ट्र ! श्रीकृष्ण परमात्मा के उसपूर्वोक्तविश्वरूप को जिसके अनेक बाहु अनेक उदर अनेक मुख अनेक नेत्रहैं और जो अनन्तरूप है और जिसका आदि मध्य अंत नहीं है और जो सर्वस्वरूपहै और जो किरीट कुण्डल गदा चक्र धारण किये है और जो तेजोरूप होकर सब दिशाओं में इसप्रकार प्रकाशमान है कि कोई उसे देख नहीं सक्ताहै और जो सब ओर अपरिमित अग्नि सूर्यकी कान्तिवाला है जो नाशरहित तथा सब कार्य कारण से परे है और जो इस संसार की उत्पत्ति रक्षा प्रलय का हेतुहै और सनातन

यत्रयोगेश्वरःकृष्णो यत्र पार्थो धनुर्द्धरः ।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवानीतिर्मतिर्मम ७८ ॥
इति श्रीमन्महाभारतेशतसहस्रसंहितायांवैयासि
क्याम्भीष्मपर्वणिश्रीमद्भगवद्गीतासूपनि
षत्सुब्रह्मविद्यायांयोगशास्त्रेश्रीकृष्णार्जु
नसंवादे मोक्षसंन्यासयोगोनामाष्टा
दशोऽध्यायः ॥ १८ ॥
शुभम्भूयात् ॥

धर्म्म का रक्षक है ऐसे जब जब स्मरण करताहूं तब तब मैं अतिआश्चर्य्यको प्राप्तहोकर वारंवार हर्षित होताहूं ७७ ॥

हे धृतराष्ट्र ! जिधर श्रीकृष्ण योगेश्वर और गाण्डीवधनुर्द्धारी अर्जुन हैं उधरही राज्यलक्ष्मी जय वृद्धि और नीति ध्रुवहै यह मेरा मतहै ७८ ॥

दोहा ॥

टीकाहै यहि ग्रन्थ में संस्कृत की, विस्तार ॥
जाहि देखि अतिविमलमति सुजनहु पावत पार १
भाषा की टीका जु यह मूलहिके अनुसार ॥
किय मुंशीहरिवंश जिमि होय ज्ञात सबसार २

इति श्रीमोक्षयोगनामक अठारहवां अध्याय समाप्तहुआ ॥ १८ ॥

इति ॥

भगवद्गीता नवलभाष्य ३॥) पुस्तक

प्रकटहो कि यह पुस्तक श्रीमद्भगवद्गीता सकल निगम पुराण स्मृति सांख्यादि सारभूत परमरहस्य गीताशास्त्रका सर्वविद्यानिधान धैर्य्यादिगुणसम्पन्न नरावतार अर्जुनको परमयोगकारी जानके मोहनाशार्थ संसारनिस्तारक भगवद्भक्तिमार्ग दृष्टिगोचर कराया है वही उक्त भगवद्गीता यद्यपि वेदान्त व योग शास्त्रान्तर्गत जिसको अच्छे अच्छे शास्त्रवेत्ता अपनी बुद्धिसे पार नहीं पासक्ते तब मन्दबुद्धिवाले जिनको कि केवल देशभाषाहीं पठन पाठन करने की सामर्थ्य है वह कब इसके अन्तराभिप्रायको क्योंकर जानसक्ते हैं और यह सत्यबात है कि जबतक किसी पुस्तक अथवा किसी वस्तुका अन्तराभिप्राय अच्छेप्रकार बुद्धि में न भासितहो तबतक आनन्द क्योंकर मिले इस प्रकार सम्पूर्ण भारतनिवासी जनोंके बुद्धिबोधार्थ सर्व विद्याविलासी भगवद्भक्त्यनुरागी श्रीमान् मुन्शी नवलकिशोरजी (सी, आई, ई)ने बहुतसा धन व्ययकर फर्रुखाबादनिवासि पण्डितवर उमादत्तजीसे इस मनोरञ्जन वेद वेदान्त शास्त्रोपरि पुस्तकको श्रीशङ्कराचार्य्यनिर्मित भाष्यानुसार संस्कृतसे सरल देशभाषामें तिलककराय नवलभाष्य आख्यसे प्रसिद्ध करादियाहै कि जिसको भाषामात्र के जाननेवाले जानसक्ते हैं ॥